वर्ष : 10 अंक : 11 नवंबर : 2025 पृष्ठ : 40 मूल्य : 50/- रु

मीडिया मैप

उदार जनतंत्र का सजग प्रहरी

ज़ोहरान ममदानी की जंग

नेहरू की विरासत की प्रासंगिकता

इंदिरा गांधी

निहित स्वार्थों का षड्यंत्र और आपातकाल

पाक - अफगान टकराव

MM

mediamapnews

सब्स्क्राइब करें हमारा डिजिटल प्लेटफार्म

: हम क्यों :

मीडिया मैप एक वैचारिक पत्रिका है। हमारे समाज के नीतिपरक और मूल्यनिष्ठ बिन्दु तथा इनसे जुड़ाव रखने वाले आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक मुद्दे इसकी विषयवस्तु है। मीडिया मैप की संपादकीय नीति उदारवादी, आधुनिक, प्रगतिशील व सर्व धर्म समभाव की भावना पर आधारित है।

मीडिया मैप हमारे बहुलतावादी समाज की विविधताओं से सृजित समस्त सोच, विचार, दृष्टिकोण, मूल्य और मान्यताओं को अपने में समाहित करने का एक प्रयास है। हमारा उद्देश्य वैज्ञानिक सोच द्वारा समाज से जुड़े मूल मुद्दों पर एक प्रबुद्ध जनमत विकसित करना है, जिससे देश में संकुचित मानसिकता और आपसी टकराव से ऊपर उठकर एक उच्चस्तरीय विचार-विमर्श का वातावरण तैयार हो सके।

MM

@mediamapnews

सब्सक्राइब करें हमारा
डिजिटल प्लेटफार्म

मीडिया मैप

उदार जनतंत्र का सजग प्रहरी

संपादकीय सलाहकार मंडल
डॉ. बलदेवराज गुप्त
के.बी. माथुर
डॉ. सलीम खान

प्रधान संपादक
प्रो. प्रदीप माथुर

संयुक्त संपादक : डॉ. सतीश मिश्रा
सहायक संपादक : प्रो. शिवाजी सरकार
विज्ञान तकनीकी संपादक : राजीव माथुर
विशेष प्रतिनिधि : डॉ. मुज़फ्फर गज़ाली
मुख्य उप संपादक : जितेन्द्र मिश्र
वरिष्ठ उप संपादक : प्रशांत गौतम
उप संपादक : अंकुर कुमार

प्रबंध संपादक : चन्द्र कुमार एडवोकेट
प्रबंधक : जगदीश गौतम
विधि परामर्शदाता : संजय माथुर

पंजीकृत कार्यालय : 2324, सेक्टर-डी
पॉकेट-2, वसंत कुंज, नई दिल्ली

संपादकीय कार्यालय : 70 ज्ञानखंड-4, इंदिरापुरम
गाजियाबाद- 201014 (उत्तर प्रदेश)

दूरभाष : 9810385757/9910069262
एम बी के एम फाउंडेशन प्रकाशन

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक प्रदीप माथुर द्वारा लक्ष्मी नगर, नई दिल्ली से मुद्रित एवं मकान नंबर 70, ज्ञानखंड-4, इंदिरापुरम, जनपद-गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश- 201014 से प्रकाशित।

सभी लेखों में लेखकों के अपने उल्लेखित विचार हैं। लेखों और विचारों को लेकर किसी तरह का विवाद होने पर पत्रिका के संपादक, प्रकाशक, मुद्रक इसके लिए उत्तरदायी नहीं होंगे। सभी विवादों का न्याय क्षेत्र जिला और न्यायालय गाजियाबाद ही होगा। इस पत्रिका से जुड़े सभी पदाधिकारी, सहयोगी और लेखक अवैतनिक हैं। पीआरबी एक्ट के तहत संपादक प्रो. प्रदीप माथुर उत्तरदायी हैं।

RNI No. : UPHIN/2016/68336

अनुक्रमणिका

4 संपादकीय : पंडित नेहरू और आधुनिक भारत का सपना

विचार-प्रवाह : नफ़रत फैलाने वाली राजनीति को चुनौती 5-7

8-9 नए समीकरणों का दौर व युवा नेतृत्व की दस्तक

समावेशी विकास और न्याय के लिए नागरिक घोषणा पत्र 9-10

11-12 ज़ोहरान ममदानी का नारा न्यूयॉर्क बिकाऊ नहीं है

अफगानिस्तान : बदलते समीकरणों में भारत की कूटनीतिक 13-14

15-16 आरएसएस : नैतिक अग्रदूत से राजनीतिक ठेकेदार तक

आवरण कथा : नेहरू की महान विरासत की प्रासंगिकता 17-19

20-21 आवरण कथा : नेहरू फोबिया का मूल कारण क्या है

दीपावली के दियों के संग जलती रिश्वत की लौ 22-23

24-25 इंदिरा गांधी, निहित स्वार्थों का षड्यंत्र और आपातकाल

विरासत को आगे बढ़ाना चाहिए 25-26

26-27 जेएनयू का वह काला दिन : जब गम और साहस साथ-साथ खड़े थे

टीवी समाचार माध्यम की विश्वसनीयता कैसे बहाल करें 28

29 सांप्रदायिक सद्भाव और मस्जिद का पुनरोद्धार

गुजरात : आर्थिक विकास और सुशासन के मॉडल में दरारें 30-31

32-33 आम बच्चों का जीवन कैसे सुधरें...

स्वैच्छिक मानकों की दुनिया को कैसे समझें 34-35

37 आज भी उतनी ही मूल्यवान है गुरु नानक देव की वाणी

Email : editor@mediamap.co.in

संपादकीय

प्रो. प्रदीप माथुर

पंडित नेहरू और आधुनिक भारत का सपना

सन् 1757 तक भारत व्यापार के नाम पर आए अंग्रेजों की गिरफ्त में आ चुका था और औपनिवेशिक शोषण का दौर शुरू हो गया था। ठीक सौ वर्ष बाद, 1857 का सिपाही विद्रोह हुआ जिसे अब भारत की स्वतंत्रता का पहला संग्राम माना जाता है। इसके बाद आजादी की चेतना धीरे-धीरे फैलती गई और अनेक नेताओं ने देश को गुलामी से मुक्त कराने का बीड़ा उठाया। परंतु भारत का असली जनांदोलन तब बना जब महात्मा गांधी का प्रवेश हुआ। 1919-20 के आसपास गांधीजी के नेतृत्व ने देश के जनमानस को जाग्रत किया और 1923 तक वे भारत के सबसे बड़े जननेता बन चुके थे। उन्होंने सोए हुए भारत को जगाया, लोगों को अपने अधिकारों का बोध कराया और आज़ादी की लड़ाई को जन-आंदोलन का रूप दिया।

यदि महात्मा गांधी ने भारत को स्वतंत्रता दिलाई तो पंडित जवाहरलाल नेहरू ने स्वतंत्र भारत को दिशा दी- उसे आधुनिकता और वैज्ञानिक चिंतन का युग दिया। नेहरू की नीतियों ने आजाद भारत को विकास के पथ पर आगे बढ़ाया। आज भारत जिस मुकाम पर है, उसका बड़ा श्रेय नेहरू की दूरदर्शिता और विवेक को जाता है। लेकिन विडंबना यह है कि उसी नेहरू को आज लगातार निशाने पर लिया जा रहा है। उन्हें बदनाम करने और उनके योगदान को मिटाने का प्रयास किया जा रहा है। यह प्रश्न स्वाभाविक है- जिस व्यक्ति ने भारत को आधुनिक राष्ट्र की नींव दी, उसकी इतनी आलोचना क्यों की जा रही है?

दरअसल नेहरू उस भारत के प्रतीक थे जो वैज्ञानिक सोच, लोकतांत्रिक मूल्यों और समानता पर आधारित था। उन्होंने मिश्रित अर्थव्यवस्था का मॉडल अपनाया जिसमें सरकार की भी भूमिका हो ताकि आर्थिक नीतियाँ केवल पूँजीपतियों के हित में न होकर जनकल्याण पर केंद्रित रहें। आज जब बाजारवाद का वर्चस्व बढ़ा है, तो वही पूँजीपति वर्ग नेहरू और उनकी नीतियों के विरोध में खड़ा दिखता है। नेहरू ने देश को विज्ञान और तर्क पर आधारित सोच दी थी। उन्होंने आस्था के नाम पर अंधविश्वास का विरोध किया और देश को आधुनिकता की दिशा में अग्रसर किया। आज जब समाज फिर से रूढ़िवाद और अंधभक्ति की ओर झुकता दिख रहा है, तब नेहरू का यह विवेकपूर्ण चिंतन और भी प्रासंगिक हो जाता है।

यह भी आवश्यक है कि हम नेहरूवाद को किसी राजनीतिक विचारधारा के रूप में नहीं, बल्कि एक सोच के रूप में देखें- एक ऐसी सोच जो राष्ट्र के हर नागरिक को विकास की मुख्यधारा से जोड़ती है। नेहरू का मानना था कि भारत को वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए, ताकि देश वैश्विक मंच पर आत्मसम्मान और प्रतिष्ठा के साथ खड़ा रह सके।

उनकी विदेश नीति गुटनिरपेक्षता पर आधारित थी- यानी भारत किसी एक महाशक्ति के प्रभाव में न आए, बल्कि सभी के साथ बराबरी और स्वतंत्रता के संबंध बनाए रखे। हाल के वर्षों में जब हमने कुछ महाशक्तियों के साथ अत्यधिक निकटता बढ़ाई, तो स्पष्ट हुआ कि नेहरू की संतुलित नीति कितनी दूरदर्शी थी। आज फिर वही नीति हमें वैश्विक सम्मान की राह दिखा सकती है। नेहरू का सपना केवल औद्योगिक प्रगति तक सीमित नहीं था; वह सामाजिक समानता, शिक्षा, विज्ञान और लोकतांत्रिक संस्थाओं की मज़बूती का भी पक्षधर था। आज जब असमानताएँ बढ़ रही हैं, जब कुछ लोगों के पास अपार संपत्ति है और आम जनता संघर्ष कर रही है, तब हमें याद रखना चाहिए कि यह स्थिति उसी सोच के त्याग का परिणाम है जो नेहरू ने हमें दी थी।

इसलिए आज सबसे बड़ी आवश्यकता है कि हम नेहरू की विरासत को पुन: समझें और स्थापित करें। उनका चिंतन भारत के लिए केवल अतीत का गौरव नहीं, बल्कि भविष्य की दिशा है। हमें एक बार फिर उस नेहरूवादी दृष्टि को अपनाना होगा जो समावेशी विकास, वैज्ञानिक प्रगति और मानवीय मूल्यों पर आधारित है। यही वह मार्ग है जो भारत को आत्मनिर्भर, आधुनिक और सम्मानजनक राष्ट्र के रूप में विश्व मंच पर प्रतिष्ठित कर सकता है।

यदि महात्मा गांधी ने भारत को स्वतंत्रता दिलाई तो पंडित जवाहरलाल नेहरू ने स्वतंत्र भारत को दिशा दी- उसे आधुनिकता और वैज्ञानिक चिंतन का युग दिया। नेहरू की नीतियों ने आजाद भारत को विकास के पथ पर आगे बढ़ाया। आज भारत जिस मुकाम पर है, उसका बड़ा श्रेय नेहरू की दूरदर्शिता और विवेक को जाता है। लेकिन विडंबना यह है कि उसी नेहरू को आज लगातार निशाने पर लिया जा रहा है। उन्हें बदनाम करने और उनके योगदान को मिटाने का प्रयास किया जा रहा है। यह प्रश्न स्वाभाविक है- जिस व्यक्ति ने भारत को आधुनिक राष्ट्र की नींव दी, उसकी इतनी आलोचना क्यों की जा रही है? दरअसल नेहरू उस भारत के प्रतीक थे जो वैज्ञानिक सोच, लोकतांत्रिक मूल्यों और समानता पर आधारित था। उन्होंने मिश्रित अर्थव्यवस्था का मॉडल अपनाया जिसमें सरकार की भी भूमिका हो ताकि आर्थिक नीतियाँ केवल पूँजीपतियों के हित में न होकर जनकल्याण पर केंद्रित रहें।

नफ़रत फैलाने वाली राजनीति को चुनौती

इस साल की दिवाली एक सुखद समाचार लेकर आई है–न केवल भारत में बल्कि उस पश्चिमी दुनिया में भी, जहाँ से इस्लामोफ़ोबिया की शुरुआत हुई थी, अब इस प्रवृत्ति के कमजोर पड़ने के संकेत दिखाई दे रहे हैं। दरअसल, इस्लामोफ़ोबिया केवल सांस्कृतिक या धार्मिक असहिष्णुता नहीं है। यह कोई मात्र ऐतिहासिक शिकायतों का परिणाम नहीं, बल्कि एक सोचा-समझा आर्थिक और राजनीतिक षड्यंत्र है, जिससे पूंजीवादी पश्चिम और भारत के हिंदू व्यापारी वर्ग को लाभ मिलता है। अपने व्यावसायिक हितों को ये लोग आधे सच और आधे झूठ के आवरण में छिपाते हैं, जिसका आज की दुनिया से कोई वास्तविक संबंध नहीं है।

भारत में मुसलमानों के खिलाफ नफ़रत फैलाने वाली राजनीति को नई पीढ़ी के राजनीतिक नेतृत्व ने चुनौती दी है। यह पीढ़ी मूल्य नियंत्रण, रोजगार के अवसर, सस्ती शिक्षा और कमजोर वर्गों व अल्पसंख्यकों के प्रति न्यायसंगत व्यवहार जैसे वास्तविक मुद्दों पर बल दे रही है। वहीं पश्चिम में यह चुनौती एक अप्रत्याशित दिशा से आई है- एक युवा भारतीय मूल के नेता ज़ोहरान ममदानी से, जो न्यूयॉर्क के मेयर चुनाव में दोनों प्रमुख दलों- रिपब्लिकन और डेमोक्रेटिक- के स्थापित नेताओं को चुनौती देकर अग्रणी उम्मीदवार बन गए हैं। ज़ोहरान की जड़ें भारत में हैं। उनके पिता मुस्लिम और माता हिंदू हैं, जो पहले अफ्रीका और बाद में अमेरिका जाकर बसे। ज़ोहरान की लोकप्रियता का एक कारण यह भी है कि वे प्रधानमंत्री मोदी और पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रंप दोनों के प्रखर आलोचक हैं।

पिछले रविवार को ज़ोहरान ममदानी के भाषण ने इस्लामोफ़ोबिया के अंत की घंटी बजा दी। यह वह मोड़ है, जिसकी प्रतीक्षा लंबे समय से थी। अमेरिका ने खाड़ी युद्धों के बाद और तथाकथित 'वॉर ऑन टेरर' के नाम पर बीते तीन दशकों में मुस्लिम देशों पर जो युद्ध और प्रचार अभियान चलाए, उन्होंने इस्लाम के खिलाफ घृणा का वैश्विक वातावरण तैयार किया। दिलचस्प बात यह है कि भारत का आरएसएस-भाजपा तंत्र भले ही खुद को हिंदू संस्कृति का रक्षक बताता हो, पर उसकी राजनीतिक सोच और संगठनात्मक पद्धति नाज़ी जर्मनी और आधुनिक ईसाई पश्चिम से प्रेरित है। उनकी 'मुस्लिम-विरोधी मुहिम' अमेरिकी कॉरपोरेट सत्ता संरचना की नकल है। अमेरिका ने 'अशिक्षित, दाढ़ी वाले आतंकवादी' को मुसलमानों का चेहरा बनाकर पूरी दुनिया में इस्लाम की गलत छवि पेश की। हकीकत में ये उग्रपंथी मुसलमानों की विशाल आबादी का नगण्य हिस्सा हैं, परंतु उन्हें प्रतीक बनाकर अरबों आम, शांतिप्रिय मुसलमानों को संदेह और नफ़रत का निशाना बना दिया गया। तीन दशकों से मुसलमान, खासकर भारत जैसे देशों में रहने वाले, घरेलू और अंतरराष्ट्रीय भेदभाव के शिकार बने हुए हैं- उन घटनाओं और व्यक्तियों के कारण जिनसे उनका कोई लेना-देना नहीं। इस्लामोफ़ोबिया कभी आतंकवाद या तानाशाही के खिलाफ संघर्ष नहीं था; यह तो बहुसंख्यकवाद और नस्लवाद को वैध ठहराने का मुखौटा था। आज जब ज़ोहरान ममदानी जैसे युवा मुस्लिम नेता अमेरिका के प्रतीक शहर न्यूयॉर्क में आत्मविश्वास के साथ चुनाव लड़ रहे हैं, तो यह न केवल इस्लामोफ़ोबिया के पतन का संकेत है, बल्कि एक नए साहस, दृष्टि और आत्मगौरव की घोषणा भी है। यह विरोधाभास भी उल्लेखनीय है कि जहाँ विवेक रामास्वामी जैसे नेता अपने हिंदू होने से कतराते हैं, वहीं ज़ोहरान ममदानी खुले तौर पर अपनी पहचान पर गर्व करते हैं। यह आज के समय का संदेश है—हिंदुओं के लिए भी—कि उन्हें संकीर्ण भावनाओं से ऊपर उठकर विनम्रता, सहिष्णुता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना होगा। युवा पीढ़ी को अब शाकाहार या धार्मिक प्रतीकों जैसे सतही मुद्दों से आगे बढ़कर आधुनिक युग की चुनौतियों का विवेकपूर्ण सामना करना चाहिए।

तनाव से गुजर रहा आस्ट्रेलिया

ऑस्ट्रेलिया इन दिनों एक नए तरह के तनाव से गुजर रहा है। अगस्त 2025 में राजधानी और कई प्रांतीय शहरों में 'इंडियन्स आउट' के बैनरों के साथ प्रदर्शन हुए, जिनमें हज़ारों लोगों ने भाग लिया। पिछले एक दशक में भारत से आने वाले प्रवासियों की संख्या दोगुने से अधिक हो गई है। 2013 में जहाँ लगभग 3.8 लाख भारतीय मूल निवासी ऑस्ट्रेलिया में रहते थे, वहीं 2024 के मध्य तक यह संख्या बढ़कर 9.16 लाख हो गई- यानी चीनी मूल के लोगों को पीछे छोड़ते हुए भारतीय, ब्रिटिशों के बाद दूसरा सबसे बड़ा प्रवासी समुदाय बन गए हैं। यह वृद्धि संयोग नहीं थी। ऑस्ट्रेलियाई विश्वविद्यालयों ने भारतीय छात्रों को बड़े पैमाने पर आकर्षित किया, उद्योगों ने आईटी और स्वास्थ्य सेवाओं के विशेषज्ञों की मांग बढ़ाई, और सरकार ने इस प्रवास को वृद्ध हो रही जनसंख्या के आर्थिक संतुलन के रूप में देखा। शुरुआत में ऑस्ट्रेलियाई समाज ने इस ऊर्जा और प्रतिभा का स्वागत किया, परंतु इतनी तेज़ी से हुए परिवर्तन ने कुछ वर्गों में असंतोष भी जन्म दिया। अब देश का एक छोटा लेकिन मुखर तबका भारतीय प्रवासियों को बढ़ते किराए, भीड़भाड़ वाले रेल तंत्र और अस्पतालों पर दबाव के लिए जिम्मेदार ठहरा रहा है। लेकिन आर्थिक आँकड़े इस आरोप का समर्थन नहीं करते। सिडनी में 2013 से 2024 के बीच घरों की कीमतें 80% बढ़ीं, किंतु विशेषज्ञ मानते हैं कि इसका कारण सीमित निर्माण और निवेश आधारित मांग है, न

कि प्रवासी जनसंख्या। वास्तव में, ऑस्ट्रेलिया के सरकारी आँकड़े बताते हैं कि प्रवासी आर्थिक दृष्टि से 'नेट योगदानकर्ता' हैं- वे जितना पाते हैं, उससे कहीं अधिक कर के रूप में लौटाते हैं। औसतन एक कुशल प्रवासी अपने जीवनकाल में 2.5 लाख ऑस्ट्रेलियाई डॉलर अधिक कर देता है। इसी तरह अंतरराष्ट्रीय छात्र- जिनमें अधिकांश भारतीय हैं- 2023 में लगभग 50 अरब डॉलर की आय देश को दी। ये प्रवासी सूचना प्रौद्योगिकी और स्वास्थ्य सेवाओं जैसे उन क्षेत्रों में काम करते हैं जहाँ स्थानीय कार्यबल की भारी कमी है। विशेषज्ञ चेतावनी देते हैं कि यदि प्रवास घटाया गया, तो वृद्ध होती आबादी के कारण कार्यबल सिकुड़ जाएगा और राष्ट्रीय विकास रुक जाएगा।

फिर भी असली संकट आर्थिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक भय का है। कुछ लोगों को भारतीय दुकानों, मंदिरों और दीवाली जैसे उत्सवों से लगता है कि उनके मोहल्ले 'बदल' रहे हैं। सोशल मीडिया ने इस भय को भड़काया और 'जनसंख्या प्रतिस्थापन' जैसी यूरोपीय साज़िशी कहानियाँ यहाँ भी फैलने लगीं। वास्तविक समस्या यह है कि देश की विकास गति उसके नियोजन से आगे निकल गई। जब सरकारें आवास, स्वास्थ्य और परिवहन में पर्याप्त निवेश नहीं करतीं, तो असंतोष का शिकार प्रवासी बनते हैं- वे लोग जो नियमों का पालन करते हुए यहाँ बेहतर भविष्य की आशा से आए थे। अब ऑस्ट्रेलिया के सामने असली परीक्षा यह है कि क्या वह अपनी आर्थिक मुश्किलों को प्रवासियों पर थोपेगा या मूल कारणों-आवास और नीति विफलता- को सुधारेगा। प्रश्न यही है: क्या दोष भारतीयों का है, या उस व्यवस्था का जिसने उन्हें आमंत्रित तो किया, पर अपने घर को तैयार नहीं किया?

चीन में दुनिया का पहला पूर्णतः स्वचालित अस्पताल

चीन ने दुनिया को चौंका दिया है- उसने पहला ऐसा कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) आधारित अस्पताल खोला है जहाँ कोई मानव डॉक्टर कार्यरत नहीं है। यह अस्पताल दावा करता है कि वह प्रतिदिन 10,000 मरीजों का इलाज कर सकता है- और यह सब उन एआई डॉक्टरों के जरिये होता है जो न सोते हैं, न थकते हैं, न अवकाश लेते हैं। विशेषज्ञ इसे 'मानव चिकित्सा का अंत' कह रहे हैं- स्वास्थ्य सेवाओं में वह मोड़, जब तकनीक ने इंसानी डॉक्टरों की जगह लेना शुरू कर दिया है। यह एआई अस्पताल एक आभासी पारिस्थितिकी तंत्र में संचालित होता है, जो स्वयं सीखने और विकसित होने की क्षमता रखता है, और Chat GPT जैसे बड़े भाषा मॉडलों पर आधारित है।

यह कोई प्रयोगशाला सिमुलेशन नहीं बल्कि पूर्णत: कार्यशील डिजिटल स्वास्थ्य प्रणाली है। चीन के वैज्ञानिकों ने एक ऐसा 'डिजिटल डॉक्टर' तैयार किया है जो निदान, दवा और फॉलो-अप देखभाल में सक्षम है। विशेषज्ञों के अनुसार, बीजिंग का लक्ष्य केवल नवाचार नहीं बल्कि वैश्विक मेडिकल टेक्नोलॉजी में नेतृत्व स्थापित करना है। यह पहल चीन की एआई, रोबोटिक्स, इलेक्ट्रिक वाहनों और सौर तकनीक में तेजी से बढ़ती ताकत का अगला चरण मानी जा रही है। 'एजेंट हॉस्पिटल' नामक इस संस्थान में कोई मानव डॉक्टर या नर्स नहीं है। यहाँ लगभग 40 एआई चिकित्सक कार्यरत हैं, जिन्हें डॉक्टर, नर्स या मेडिकल छात्र जैसी भूमिकाओं के लिए प्रशिक्षित किया गया है। मरीज आते ही पहचान पत्र स्कैन करता है और सिस्टम उसका पूरा मेडिकल इतिहास जुटा लेता है। कुछ ही सेकंड में एआई डॉक्टर डेटा का विश्लेषण कर निदान और उपचार तय करता है- जो मानव डॉक्टरों को घंटों लग सकते हैं। यह प्रणाली एक साथ 10,000-20,000 मरीज संभाल सकती है। परीक्षणों में इन एआई डॉक्टरों ने मानकीकृत परीक्षाओं में 93% से अधिक अंक पाए-जो मानव मेडिकल छात्रों से बेहतर हैं। वे न थकते हैं, न भूलते हैं, न ही पक्षपात या रिश्वत जैसी मानवीय कमियों से ग्रस्त हैं। मरीजों के लिए यह तेज़, सटीक और सस्ता इलाज है। पर डॉक्टरों के लिए यह खतरे की घंटी है। 'कृत्रिम बुद्धिमत्ता पहले ही लाखों नौकरियाँ खत्म कर चुकी है, अब यह डॉक्टरों की बारी है,' रिपोर्ट कहती है। चीन में पहले से कुछ अदालतों में एआई न्यायाधीश काम कर रहे हैं- अब चिकित्सा क्षेत्र भी उसी राह पर है। यह अस्पताल केवल तकनीकी प्रयोग नहीं, बल्कि चीन का रणनीतिक संदेश भी है- कि वह अब नकल नहीं, नवाचार का अगुआ है। यदि 'एजेंट हॉस्पिटल' मॉडल सफल रहा, तो यह पूरी दुनिया की स्वास्थ्य प्रणाली को बदल सकता है। पर सवाल भी गंभीर हैं- क्या सहानुभूति को प्रोग्राम किया जा सकता है? क्या मशीनों को जीवन-मृत्यु के निर्णय लेने चाहिए? फिलहाल इतना तय है कि एआई डॉक्टरों का युग शुरू हो चुका है- और चिकित्सा जगत अब पहले जैसा नहीं रहेगा।

SIR : मताधिकार से वंचित करने का खतरा

देशभर में आज से शुरू हो रही स्पेशल इलेक्टोरल रिवीजन (SIR) की प्रक्रिया ने राजनीतिक और सामाजिक हलकों में तूफान खड़ा कर दिया है। यह अभ्यास 4 नवम्बर 2025 से शुरू होकर 7 फरवरी 2026 तक अंतिम मतदाता सूची के प्रकाशन के साथ पूरा होगा। जहां भारत निर्वाचन आयोग (ECI) का दावा है कि यह महज 'सफाई अभियान' है ताकि फर्जी और दोहरी प्रविष्टियों को हटाया जा सके, वहीं विपक्षी दल इसे 'पीछे के दरवाजे से लाया गया NRC' बता रहे हैं। विशेष रूप से बिहार, पश्चिम बंगाल, केरल और तमिलनाडु जैसे राज्यों में इस अभियान को लेकर तीखी बहस और विरोध-प्रदर्शन शुरू हो गए हैं।

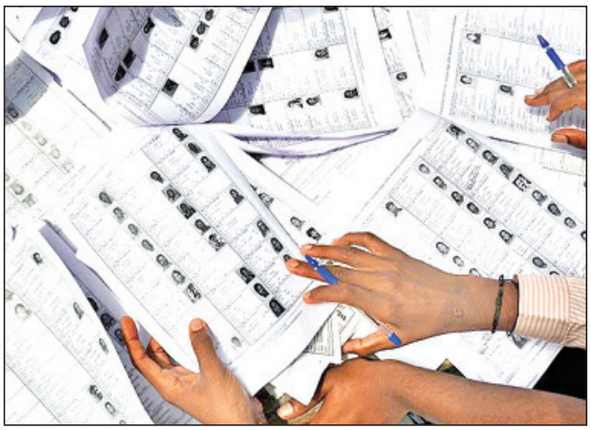

बिहार से उठी विवाद की चिंगारी : 2025 की शुरुआत में बिहार में चले SIR के पायलट प्रोजेक्ट ने ही विवाद की नींव रख दी थी। वहां अंतिम मतदाता सूची से 3.66 लाख नाम हटा दिए गए, जबकि ड्राफ्ट सूची से करीब 65 लाख प्रविष्टियाँ हटाई गईं। इस पर सुप्रीम कोर्ट तक को हस्तक्षेप करना पड़ा, और कई याचिकाएं दायर की गईं जिनमें संविधान के अनुच्छेद 326 (मताधिकार का अधिकार) के उल्लंघन का आरोप लगाया गया। विपक्ष ने इसे 'मतदाता दमन' करार दिया।

विपक्ष के आरोप : कांग्रेस, तृणमूल कांग्रेस (TMC) और माकपा (CPI-M) जैसे दलों का कहना है कि यह पूरी कवायद राजनीतिक रूप से प्रेरित है जिसका उद्देश्य अल्पसंख्यकों और हाशिए पर मौजूद तबकों को मताधिकार से वंचित करना है। वे इसे 'नागरिकता प्रमाण के बोझ' से आम मतदाता को डराने का प्रयास बता रहे हैं। केरल के खाड़ी देशों में बसे प्रवासी समुदाय के मताधिकार को लेकर भी गंभीर चिंताएँ उठी हैं।

निर्वाचन आयोग का पक्ष : ECI ने कहा है कि SIR का उद्देश्य पारदर्शिता बढ़ाना और 'घोस्ट वोटर' यानी मृतक या फर्जी नामों को हटाना है। आयोग का तर्क है कि यह लोकतंत्र को मजबूत करने की दिशा में कदम है। पर आलोचकों का कहना है कि इससे जिम्मेदारी नागरिकों पर डाल दी गई है कि वे खुद साबित करें कि वे मतदाता सूची में बने रहने के योग्य हैं।

दूसरे चरण में नई सावधानियां : दूसरा चरण, जो नवम्बर 2025 से शुरू हो रहा है, बिहार के अनुभवों से सीख लेते हुए कुछ बदलावों के साथ लागू किया जा रहा है-

- अब भौतिक फॉर्म की आवश्यकता नहीं, मोबाइल ऐप या हेल्पलाइन के जरिए स्वयं-प्रमाणन किया जा सकेगा।
- आपत्तियाँ और दावे दाखिल करने की समय-सीमा अधिकांश राज्यों में दिसम्बर मध्य तक बढ़ाई गई है।
- पारदर्शिता के लिए सभी दलों की बैठकें अनिवार्य की गई हैं। हालांकि नागरिकता सत्यापन जैसी मूल चिंताएँ अब भी बनी हुई हैं। पश्चिम बंगाल में कथित पक्षपात को रोकने के लिए 14 जिलाधिकारियों के तबादले जैसे कदम उठाए गए हैं।

पश्चिम बंगाल में बढ़ता तनाव : पश्चिम बंगाल में SIR की शुरुआत 2026 विधानसभा चुनावों से पहले हो रही है। TMC ने चेतावनी दी है कि यह 'साइलेंट इनविज़िबल रिगिंग' (अदृश्य चुनावी हेराफेरी) का जरिया बन सकती है, जिससे 1-2 करोड़ वास्तविक मतदाताओं, विशेषकर मुसलमानों और प्रवासियों के नाम काटे जा सकते हैं। अभिषेक बनर्जी ने राज्यव्यापी विरोध और कानूनी कार्रवाई की घोषणा की है। वहीं BJP का कहना है कि इससे 1.2 करोड़ अवैध मतदाता, जिनमें वह रोहिंग्या और बांग्लादेशी घुसपैठियों को गिनती है, हटाए जाएंगे- लेकिन इससे राज्य में साम्प्रदायिक तनाव बढ़ गया है।

SIR को लेकर जारी विवाद यह संकेत देता है कि मतदाता सूची की 'सफाई' अब केवल प्रशासनिक अभ्यास नहीं रह गई, बल्कि नागरिकता, लोकतंत्र और साम्प्रदायिक राजनीति के केंद्र में आ खड़ी हुई है। आयोग के लिए चुनौती होगी कि वह इस कवायद को निष्पक्ष और भरोसेमंद बनाए-ताकि 'साफ-सुथरी मतदाता सूची' के वादे के बीच किसी का मताधिकार न छिने।

क्या अयोध्या का हवाई अड्डा बंद होगा

देश पर चोट बंद हुए सात एअरपोर्ट पीएम मोदी खेला करने में माहिर हैं। आर्थिक अपराध और भ्रष्टाचार का खेल मोदी सरकार से बेहतर कोई नहीं खेल सकता। इसकी ताजा मिसाल है उत्तर प्रदेश में उद्घाटन के 10 महीने के अंदर ही बंद हुए सात एअरपोर्ट से यूपी में उद्घाटन के 10 महीने के अंदर ही चित्रकूट, कुशीनगर। आजमगढ़, अलीगढ़, मुरादाबाद, श्रावस्ती और सहारनपुर के एयरपोर्ट्स बंद हो गए। सवाल पैदा होता है कि क्या एअरपोर्ट बनाने से पहले मोदी को अंदाजा नहीं था की ये हवाई अड्डे उद्घाटन के तुरंत बाद ही बंद हो जाएंगे? अगर उन्हें अंदाजा था तो उन्होंने हवाई अड्डे बनाने के लिए देश का हजारों करोड़ क्यों लौटा दिया? जब आप साफ है मोदी को पता था कि यूपी के हर जिले में जो हवाई अड्डे हों बनवा रहे हैं वो यात्रियों की कमी के कारण जल्द ही बंद हो जाएंगे। लेकिन फिर भी मोदी ने एअरपोर्ट बनवाए। सवाल पैदा होता है कि उन्होंने ऐसा क्यों किया? दरअसल उन्हें अपने डूबते हुए मित्र अडानी को बचाना था। अडानी पर दुनिया भर में फ्रॉड के मुकदमे दर्ज हो रहे थे। अडानी का बिज़नेस टू? अडानी को डूबने से बचाने के लिए मोदी ने ये हवाई अड्डे बनवाए और इसका ठेका अडानी को दे दिया। अडानी ने जब पैसा बना लिया तो मोदी ने एअरपोर्ट बंद करवा दिए। देश पर चोट बंद हुए। सात एअरपोर्ट।

नए समीकरणों का दौर व युवा नेतृत्व की दस्तक

बिहार के चुनाव हमेशा राष्ट्रीय राजनीति के केन्द्र में रहे हैं। यह केवल एक राज्य का चुनाव नहीं होता, बल्कि देश के राजनीतिक तापमान का सूचक भी होता है। बिहार के 40 लोकसभा क्षेत्र और गहरी राजनीतिक चेतना इसे एक निर्णायक भूमिका में रखते हैं। आज फिर से बिहार चर्चा में है– जहाँ नीतीश कुमार, तेजस्वी यादव और प्रशांत किशोर जैसे नेता राज्य की सत्ता के लिए संघर्षरत हैं। इस बार के चुनाव का परिदृश्य पहले से अधिक जटिल और दिलचस्प है। जातीय समीकरणों, सामाजिक न्याय, युवा नेतृत्व और नए राजनीतिक प्रयोगों की टकराहट ने बिहार को एक बार फिर से देश की राजनीति का 'लैब' बना दिया है।

चंद्र कुमार एडवोकेट

एनडीए की दुविधा- नेतृत्व का प्रश्न : एनडीए गठबंधन इस बार भी मुख्यमंत्री पद का चेहरा घोषित करने से बच रहा है। भाजपा के भीतर और जदयू के साथ रिश्तों में तनातनी अब किसी से छिपी नहीं। भाजपा, बड़ी पार्टी होते हुए भी, लंबे समय से नीतीश कुमार के नेतृत्व को स्वीकारती रही है। परंतु अब समीकरण बदल रहे हैं। प्रशांत किशोर की जन सुराज पार्टी के मैदान में उतरने से भाजपा को ऊपरी जातियों के वोट बैंक के बिखरने का डर है। भाजपा की परंपरागत मजबूती उच्च जातियों में रही है और प्रशांत किशोर का प्रभाव भी इन्हीं तबकों में बढ़ता दिख रहा है। ऐसे में भाजपा न तो खुलकर नीतीश कुमार को आगे करना चाहती है, न ही खुद का चेहरा सामने लाना चाहती है। दूसरी ओर, महागठबंधन ने तेजस्वी यादव को अपने मुख्यमंत्री प्रत्याशी के रूप में प्रोजेक्ट कर स्पष्टता दिखाई है। यह रणनीतिक कदम महागठबंधन को एक ठोस दिशा देता है जबकि एनडीए की असमंजस स्थिति जनता के बीच सवाल पैदा करती है।

प्रशांत किशोर- रणनीतिकार से चुनौतीकर्ता तक : प्रशांत किशोर बिहार की राजनीति के सबसे दिलचस्प किरदार बन चुके हैं। कभी नरेंद्र मोदी और ममता बनर्जी के लिए रणनीति बनाने वाले प्रशांत किशोर अब खुद मैदान में हैं। बहुतों का मानना है कि वे भाजपा की 'बी–टीम' हैं, परंतु वास्तविकता इससे अलग हो सकती है। उनका समर्थन आधार वही ऊँची जातियाँ और शहरी तबके हैं, जो कभी भाजपा की रीढ़ हुआ करते थे। अत: उनका असर भाजपा के वोट बैंक को सीधे चुनौती देने वाला है। वे न तो पूरी तरह भाजपा विरोधी हैं, न समर्थक—परंतु उनकी मौजूदगी से चुनाव का गणित अवश्य बदल जाएगा।

फ्रीबीज की राजनीति- जनता की बदलती समझ : बिहार में इस बार सरकार ने महिलाओं को 10,000 तक का डायरेक्ट ट्रांसफर दिया है। वहीं महागठबंधन ने हर परिवार से एक व्यक्ति को नौकरी देने का वादा किया है। ऐसी घोषणाएँ अब भारतीय राजनीति का सामान्य हिस्सा बन चुकी हैं। प्रो. माथुर का मानना है कि 'जनता अब समझदार हो चुकी है। 10,000 या नौकरी के वादे अब वोट तय नहीं करते। लोग जानते हैं कि यह सरकारी पैसा है, कोई व्यक्तिगत दान नहीं।' अर्थात, बिहार में मतदाता अब केवल 'फ्रीबीज' नहीं, बल्कि रोजगार, शिक्षा, और विकास जैसे ठोस मुद्दों पर भी विचार कर रहे हैं।

सामाजिक न्याय बनाम जातिवाद- शाश्वत बहस : बिहार की राजनीति की धुरी हमेशा से 'सामाजिक न्याय' रही है। लेकिन यही बहस जातिवाद में बदल जाती है। प्रो. माथुर कहते हैं, 'जातिवाद का आरोप वही लगाते हैं जो नहीं चाहते कि पिछड़े और दलित वर्ग सशक्त हों।' लालू यादव के दौर में ऊँची जातियों के वर्चस्व को चुनौती मिली, और यही सामाजिक परिवर्तन कुछ वर्गों को असहज लगा। आज भी जाति बिहार के चुनाव का कारक है, परंतु नई पीढ़ी में यह मुद्दा अब निर्णायक नहीं रहा। अब चर्चा बेरोजगारी, शिक्षा, और अवसरों की समानता पर हो रही है।

नीतीश कुमार- स्थिरता या थकान का प्रतीक : नीतीश कुमार पिछले दो दशकों से बिहार की राजनीति का प्रमुख चेहरा रहे हैं। उन्होंने एनडीए और महागठबंधन दोनों के साथ सत्ता साझा की है। परंतु अब जनता के बीच यह सवाल गूंज रहा है कि 'क्या नीतीश पर भरोसा किया जा सकता है?' प्रो. माथुर का मत है कि नीतीश अभी भी महत्वपूर्ण फैक्टर हैं, पर मुख्य किरदार नहीं। भाजपा उन्हें राजनीतिक मजबूरी में साथ रख रही है। उनकी उम्र और बार–बार गठबंधन बदलने की प्रवृत्ति अब जनता के बीच थकान का भाव पैदा कर रही है। संभव है कि यह नीतीश कुमार का अंतिम चुनाव हो।

युवा चेहरों का उभार- नई राजनीति की दस्तक : बिहार की राजनीति में अब युवा नेतृत्व का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। तेजस्वी यादव, चिराग पासवान, मुकेश सहनी, और नीतीश कुमार के पुत्र निश्चय– All Represent a Generational Shift. प्रो. माथुर के अनुसार, 'बिहार के युवा नेताओं में ऊर्जा और जनसंपर्क की क्षमता है। वे लोगों से संवाद करते हैं, सोशल मीडिया के माध्यम से जनमत बनाते हैं। यह पुरानी राजनीति से अलग है।' भाजपा के पास फिलहाल कोई ऐसा युवा चेहरा नहीं जो इनसे टक्कर ले सके– यह उसकी सबसे बड़ी कमजोरी है।

मल्लाह जाति और राजनीतिक गणित : बिहार के राजनीतिक समीकरण में मल्लाह जाति का योगदान महत्वपूर्ण है। राज्य में लगभग 34 लाख मल्लाह मतदाता हैं, जो कई सीटों का रुख बदल सकते हैं। महागठबंधन द्वारा मुकेश सहनी को उपमुख्यमंत्री पद का उम्मीदवार घोषित करना इसी जातीय रणनीति का हिस्सा है। यह कदम महागठबंधन को नीचली जातियों में मजबूती देता है।

जंगलराज बनाम सुशासन : पुरानी बहस का अंत : हर चुनाव में लालू यादव के शासनकाल को 'जंगलराज' कहकर भाजपा प्रचार करती रही है। परंतु अब यह मुद्दा थक चुका है। प्रो. माथुर कहते हैं, 'लालू बीस साल से सत्ता से

बाहर हैं। अब जंगलराज का डर केवल प्रचार का औजार है, वास्तविकता नहीं।' लालू पर लगे आरोपों के बावजूद उन्होंने बिहार में पिछड़ी जातियों को आवाज दी। आज भी उनकी छवि गरीबों और ग्रामीण तबकों में सम्मान की है। सुशासन बनाम जंगलराज का नारा अब मतदाताओं पर प्रभाव नहीं डालता।

आर्थिक पिछड़ापन- विकास की असली चुनौती : बिहार की सबसे बड़ी समस्या आर्थिक ढाँचे की कमजोरी है। न उद्योग हैं, न पर्याप्त आधारभूत ढाँचा। राज्य अब भी कृषि-आधारित है, लेकिन यहाँ की कृषि निरंतर प्राकृतिक आपदाओं से जूझती है। बाढ़ और सूखे का चक्र किसान की कमर तोड़ देता है। नदियों पर पर्याप्त बाँध नहीं हैं, सिंचाई का अभाव है। जब कृषि मज़बूत नहीं होगी, तो ग्रामीण अर्थव्यवस्था भी कमजोर रहेगी। यही कारण है कि बिहार अब भी देश का सबसे पिछड़ा राज्य माना जाता है। प्रो. माथुर कहते हैं, 'अगर बिहार की नदियों पर डैम बन जाएँ, बाढ़ पर नियंत्रण हो, तो राज्य की कृषि क्रांति देखेगा। पंजाब की तरह यहाँ भी हरित क्रांति संभव है।'

वामपंथ की वापसी- विचारधारा की राजनीति जिंदा है : जहाँ देश के अधिकांश हिस्सों से वामपंथ सिमट गया है, वहीं बिहार में CPI(ML) को अब भी सम्मानजनक समर्थन मिल रहा है। गठबंधन द्वारा वामपंथी दलों को 20 सीटें देना इस बात का प्रमाण है कि बिहार की राजनीति अब भी आम आदमी के मुद्दों से जुड़ी हुई है। यह तथ्य बताता है कि बिहार केवल जातीय या व्यक्तिवादी राजनीति का प्रदेश नहीं, बल्कि वैचारिक संघर्षों की भूमि भी है।

अभिनेताओं का प्रवेश- राजनीति का नया चेहरा : इस चुनाव में कई गायक, अभिनेता और जनप्रिय चेहरे मैदान में हैं। कुछ लोग इसे राजनीति के पतन के रूप में देखते हैं, परंतु प्रो. माथुर का मत भिन्न है— 'जनता जिसे पसंद करती है, वही लोकतंत्र में प्रतिनिधि बन सकता है। अभिनेता या कलाकार जनता के बीच लोकप्रिय हैं, तो राजनीति में उनका प्रवेश स्वाभाविक है।' उनका मानना है कि राजनीति केवल विद्वानों की बपौती नहीं है। जनता से जुड़ा कोई भी व्यक्ति राजनीति को समझ सकता है, बशर्ते वह ईमानदार और जनसेवी हो।

राजनीतिक अनुभव और जनता से जुड़ाव : राजनीति केवल स्टूडियो या टीवी डिबेट से नहीं सीखी जा सकती। जो नेता जनता के बीच रहते हैं, वही राजनीति की नब्ज समझते हैं। राहुल गांधी की 'भारत जोड़ो यात्रा' और प्रशांत किशोर की 'जन सुराज यात्रा' दोनों इसी का उदाहरण हैं।

प्रो. माथुर के शब्दों में : 'राहुल गांधी पहले किताबों से राजनीति समझते थे, अब ज़मीन से सीख रहे हैं। प्रशांत किशोर भी वही कर रहे हैं जो कभी जयप्रकाश नारायण ने किया था- जनता के बीच जाकर संवाद।'

बिहार की राजनीति- जाति से मुद्दों की ओर : इस बार का चुनाव केवल जातीय समीकरणों का नहीं, बल्कि मुद्दों का चुनाव बनने की संभावना रखता है। बेरोजगारी, पलायन, शिक्षा और आर्थिक अवसरों की कमी जैसे प्रश्न अब लोगों के दिमाग में हैं। जाति अब भी एक फैक्टर है, पर निर्णायक नहीं। नई पीढ़ी अपनी पहचान से अधिक अपने अवसरों को लेकर सजग है। यह परिवर्तन बिहार को एक नई दिशा में ले जा सकता है- जहाँ 'सामाजिक न्याय' और 'आर्थिक विकास' दोनों एक साथ चलें।

निष्कर्ष- परिवर्तन की देहरी पर बिहार : बिहार आज एक संक्रमणकाल में है। पुरानी राजनीति अपने चरम पर पहुँचकर थक चुकी है और नई राजनीति दरवाज़े पर दस्तक दे रही है। प्रो. माथुर के अनुसार, 'बिहार में सत्ता परिवर्तन केवल दलों का नहीं, पीढ़ियों का होगा। तेजस्वी यादव जैसे युवा नेता इस बार निर्णायक भूमिका में दिखेंगे। नीतीश कुमार की राजनीतिक यात्रा अपने अंतिम मोड़ पर प्रतीत होती है।' अंततः, यह चुनाव तय करेगा कि बिहार अतीत की जातिगत राजनीति में उलझा रहेगा या विकास, शिक्षा और युवाओं की आकांक्षाओं के रास्ते पर आगे बढ़ेगा।

परिणाम की झलक : अगर महागठबंधन जीतता है तो तेजस्वी यादव मुख्यमंत्री पद की स्वाभाविक पसंद होंगे। और यदि एनडीए जीतता है तो भी नीतीश कुमार का दोबारा मुख्यमंत्री बनना कठिन दिखता है। भाजपा नए नेतृत्व की तलाश में है। प्रशांत किशोर, यदि 20-25 सीटें भी हासिल कर लेते हैं, तो वे बिहार की राजनीति में तीसरा ध्रुव बन सकते हैं।

जो भी हो—बिहार बदल रहा है : यह अब केवल राजनीति का मैदान नहीं, बल्कि नई भारत की दिशा तय करने वाली भूमि बन चुका है।

समावेशी विकास और न्याय के लिए नागरिक घोषणा पत्र

सैयद खलीक अहमद

जन-आधारित राजनीति के सशक्त संदेश के रूप में बिहार डेमोक्रेटिक फोरम (BDF) ने 2025 विधानसभा चुनावों के लिए अपना 'नागरिक घोषणा पत्र' जारी किया है। यह दस्तावेज बिहार को समानता, अवसर और पारदर्शी शासन वाले राज्य में रूपांतरित करने का एक महत्वाकांक्षी खाका पेश करता है।

पटना में आयोजित एक सादे समारोह में जारी यह घोषणा पत्र चुनाव से पहले सामने आए सबसे व्यापक वैकल्पिक नीति दस्तावेजों में से एक बताया जा रहा है। इसमें शिक्षा, रोजगार, महिला अधिकार, स्वास्थ्य, कृषि और सुशासन जैसे दस प्रमुख क्षेत्रों को शामिल किया गया है- जो सामाजिक न्याय और सतत विकास की दृष्टि से जुड़े हैं। BDF, जो नागरिक समाज समूहों, शिक्षाविदों और सामाजिक कार्यकर्ताओं का एक साझा मंच है, का कहना है कि यह घोषणा पत्र राजनीतिक वादों के बजाय जन-आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति है। इसका उद्देश्य बिहार के वंचित समुदायों- दलितों, अल्पसंख्यकों, महिलाओं, युवाओं और प्रवासी श्रमिकों की आवाज़ को सामने लाना है, जिन्हें राज्य के विकास की मुख्यधारा से अब तक अलग रखा गया है।

आर्थिक सशक्तिकरण और रोजगार प्राथमिकता पर : घोषणा पत्र की शुरुआत रोजगार और आजीविका पर गहन फोकस से होती है। इसमें अल्पसंख्यक रोजगार ऋण योजना को पुनर्जीवित करने की मांग की गई है- यह बिना ब्याज की माइक्रोफाइनेंस योजना होगी जिसे बिहार राज्य अल्पसंख्यक वित्त निगम के माध्यम से 500 करोड़ के वार्षिक बजट के साथ चलाया जाएगा, ताकि अल्पसंख्यकों और असंगठित कामगारों में उद्यमिता को बढ़ावा दिया जा सके।

बेरोजगारी की गंभीर समस्या से निपटने के लिए BDF ने एप्रेंटिसशिप और स्किल वाउचर योजना का प्रस्ताव रखा है, जो MSME क्षेत्र से जुड़ी होगी और युवाओं को प्रशिक्षण व रोजगार से जोड़ेगी। गिग और

असंगठित क्षेत्र की महिला श्रमिकों के लिए कार्यघंटों, सुरक्षा और उचित वेतन से संबंधित कानूनी सुरक्षा की मांग की गई है।

BDF के अनुसार, 'ये उपाय उन लाखों श्रमिकों के लिए सुरक्षा कवच बनाने की कोशिश हैं, जो बिना पहचान और अधिकारों के बिहार की अर्थव्यवस्था को चलाते हैं।'

शिक्षा और युवाओं को केंद्र में रखकर विकास : घोषणा पत्र का मुख्य आधार शिक्षा और युवा सशक्तिकरण है। इसमें शिक्षा अधिकार गारंटी की घोषणा की गई है, जिसके तहत बारहवीं कक्षा तक मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराई जाएगी, साथ ही विद्यालयी ढांचे और शिक्षण गुणवत्ता में सुधार किया जाएगा।

BDF ने एक वर्ष के भीतर 2.5 लाख शिक्षकों की रिक्तियां भरने और हर प्रखंड में एक अंग्रेज़ी माध्यम मॉडल स्कूल खोलने का वादा किया है। अनुसूचित जाति, जनजाति और अल्पसंख्यक छात्रों के लिए आवासीय विद्यालय, मदरसों का आधुनिकीकरण, और अल्पसंख्यक बहुल इलाकों में छात्रावास खोलना भी योजना का हिस्सा है।

वंचित समुदायों के छात्रों के लिए UPSC, BPSC, JEE और NEET जैसी परीक्षाओं की नि:शुल्क कोचिंग की व्यवस्था होगी। बारहवीं पास छात्रों को मुफ्त लैपटॉप और इंटरनेट दिया जाएगा, जबकि उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाली छात्राओं को एक लाख की छात्रवृत्ति मिलेगी। स्टूडेंट क्रेडिट कार्ड योजना को 6 लाख की सीमा तक पुनर्गठित करने और प्रत्येक पंचायत व वार्ड में पुस्तकालय खोलने का वादा किया गया है, ताकि एक 'ज्ञान-आधारित सामाजिक गतिशीलता तंत्र' विकसित किया जा सके।

महिलाओं को परिवर्तन का केंद्र : घोषणा पत्र में महिलाओं को बिहार के परिवर्तन की धुरी बताया गया है। महिला स्वाभिमान योजना के तहत गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले परिवारों की महिला मुखिया को 1,000 मासिक सहायता देने का प्रस्ताव है।

सरकारी नौकरियों और स्थानीय शासन निकायों में 50% आरक्षण महिलाओं के लिए सुनिश्चित करने की बात कही गई है।

महिला सुरक्षा और न्याय के लिए 100 महिला न्यायाधीशों की फास्ट-ट्रैक अदालतें गठित करने का सुझाव दिया गया है, ताकि लैंगिक हिंसा के मामलों का शीघ्र निपटारा हो सके। स्वयं सहायता समूहों (SHGs) की संख्या पाँच लाख तक बढ़ाने और उन्हें राज्य स्तरीय फंडिंग से सीधे जोड़ने का प्रस्ताव है। विधवाओं, परित्यक्ता और अकेली महिलाओं के लिए छात्रावास, छात्रवृत्ति और आवास सहायता, तथा घरेलू या सांप्रदायिक हिंसा पीड़ितों के लिए कानूनी व आर्थिक सहयोग का भी प्रावधान है। BDF का कहना है, 'यह घोषणा पत्र महिलाओं को लाभार्थी नहीं, बल्कि निर्णयकर्ता और बिहार के विकास की अग्रदूत के रूप में देखता है।'

सामाजिक न्याय और समानता का ढांचा : जाति और समुदाय आधारित समावेशन को इस घोषणा पत्र की राजनीतिक दृष्टि का केंद्र बताया गया है। BDF ने नवीन जातिगत जनगणना की मांग की है, जिससे नीतियों और कल्याणकारी योजनाओं का वितरण समानता पर आधारित हो सके। न्याय बजट ढांचा (Nyay Budget Framework) के तहत दलितों, अतिपिछड़ों और पसमांदा मुसलमानों के लिए अलग बजटीय प्रावधान रखने का प्रस्ताव है। अल्पसंख्यक समुदायों के लिए अल्पसंख्यक केंद्रित जिलों (Minority Concentrated Districts) की घोषणा, भीड़ हिंसा की जांच के लिए अल्पसंख्यक प्रतिनिधित्व वाली विशेष जांच टीमों (SITs) का गठन, और वक्फ संशोधन विधेयक 2025 का विरोध शामिल है।

इसके साथ ही, कब्रिस्तानों और विरासत स्थलों की सुरक्षा, उर्दू को बढ़ावा, मदरसों का आधुनिकीकरण और पारंपरिक कारीगरों को सहायता का भी उल्लेख है। भूमिहीन दलितों, आदिवासियों और मुसलमानों के लिए भूमि पुनर्वितरण आयोग बनाने की घोषणा की गई है, ताकि अधिशेष भूमि का पुनर्वितरण हो सके- यानी बिहार के लंबे समय से ठहरे भूमि सुधार एजेंडे को पुनर्जीवित किया जा सके।

स्वच्छ शासन और स्मार्ट ढांचा : भ्रष्टाचार और अक्षमता पर सीधा प्रहार करते हुए, घोषणा पत्र में 10 लाख से ऊपर के सभी सरकारी ठेकों को ऑनलाइन सार्वजनिक करने और उनकी निगरानी के लिए नागरिकों की भागीदारी वाले स्वतंत्र एंटी-करप्शन वॉचडॉग के गठन की मांग की गई है।

पिछले एक दशक की ग्रामीण आधारभूत परियोजनाओं का थर्ड-पार्टी ऑडिट कराने का प्रस्ताव है। शहरी विकास के क्षेत्र में 'स्मार्ट गांव' की अवधारणा दी गई है- जहां डिजिटल कनेक्टिविटी, कचरा प्रबंधन और पाइप से जलापूर्ति होगी। ग्रामीण आवास योजना प्लस के तहत 10 लाख नए घर दलित, मुस्लिम और अतिपिछड़ा वर्ग परिवारों को देने का वादा है। साथ ही, 2028 तक हर घर को शुद्ध पेयजल उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया है।

स्वास्थ्य और ग्रामीण कल्याण : स्वास्थ्य को मौलिक अधिकार घोषित करते हुए, BDF ने सरकारी अस्पतालों में मुफ्त दवाइयों और जांच सेवाओं का वादा किया है और तीन वर्षों में प्राथमिक व सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्रों को पूरी तरह से आधुनिक बनाने का लक्ष्य रखा है। हर पंचायत को एक एंबुलेंस, और शहरी झुग्गियों में नए स्वास्थ्य क्लिनिक देने की योजना है। महिलाओं के लिए महिला स्वास्थ्य कोष बनाया जाएगा, जो मासिक स्वच्छता, मातृ देखभाल और मोबाइल हेल्थ वैन जैसी सेवाओं को सहयोग देगा।

ग्रामीण क्षेत्र के लिए, घोषणा पत्र में प्रमुख फसलों पर न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) की गारंटी, छोटे किसानों के कर्ज माफी, और बटाईदारों की कानूनी मान्यता का प्रस्ताव है। सिंचाई और डेयरी के लिए मुफ्त बिजली, कृषि-आधारित उद्योगों को सहयोग, और डेयरी किसानों के लिए सब्सिडी शामिल है। प्रवासी मजदूरों के लिए माइग्रेंट वर्कर वेलफेयर फंड का गठन होगा, जो ऑफ-सीजन के दौरान 5,000 मासिक सहायता देगा। 50 किसान शहरी बाजार कोल्ड स्टोरेज के साथ बनाए जाएंगे ताकि किसान सीधे उपभोक्ताओं से जुड़ सकें।

लोकतंत्र, संस्कृति और पहचान : शासन सुधार के तहत पंचायत राज संस्थाओं को सशक्त करने, सूचना के अधिकार (RTI) के विस्तार, और पुलिस व न्यायिक सुधारों की मांग की गई है ताकि हिरासत में यातना जैसी प्रथाएं समाप्त हों। पत्रकारों- विशेषकर स्वतंत्र पत्रकारों को सरकारी पहचान पत्र और कानूनी संरक्षण देने का प्रस्ताव है। संस्कृति के क्षेत्र में घोषणा पत्र बिहार की भाषाई और सांस्कृतिक विविधता को सम्मान देने की बात करता है- स्कूलों और प्रशासन में भोजपुरी, मैथिली, मगही, अंगिका और उर्दू को बढ़ावा दिया जाएगा। सांस्कृतिक केंद्र, युवा कला फैलोशिप, और विरासत-आधारित पर्यटन विकास कार्यक्रम भी प्रस्तावित हैं, जिनमें दलित, आदिवासी और अल्पसंख्यक इतिहास से जुड़े स्थलों पर विशेष ध्यान दिया जाएगा।

(सैयद खलीक अहमद वरिष्ठ पत्रकार और अल्पसंख्यक अधिकारों के समर्थक हैं। वे इंडिया टुमॉरो के संपादक हैं)

ज़ोहरान ममदानी का नारा न्यूयॉर्क बिकाऊ नहीं है

यह कहना कठिन है कि बिहार चुनावों का परिणाम–विशेषकर यदि उसमें I.N.D.I.A गठबंधन की जीत होती है– देश की राजनीतिक तस्वीर को बदलेगा या नहीं। लेकिन पटना से 12,000 किलोमीटर दूर एक चुनाव ऐसा जरूर है जो अमेरिकी राजनीति को लगभग सौ साल पहले फ्रैंकलिन रूज़वेल्ट के बाद सबसे बड़ी करवट देने वाला साबित हो सकता है। इस बदलाव की अगुवाई कर रहा है एक ऐसा राजनीतिक नवागंतुक जिसकी जड़ें भारत से गहराई से जुड़ी हैं– 'ज़ोहरान ममदानी', एक मुस्लिम पिता और हिंदू मां के पुत्र। न्यूयॉर्क में उनके चुनावी जनसभा का दृश्य कुछ इस तरह था–

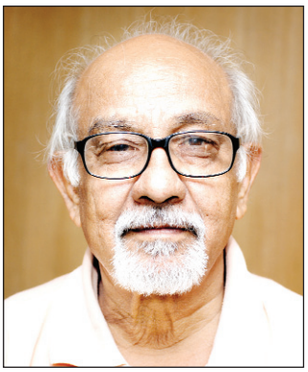

डॉ. सतीश मिश्रा

न्यूयॉर्क बिकाऊ नहीं है : सबसे पहले रोशनी जली–हजारों लाइटें, एक–एक कर फॉरेस्ट हिल्स स्टेडियम में ऐसे चमक उठीं जैसे किसी शहरी आकाश में तारे टिमटिमा रहे हों। उनकी चमक के नीचे 13,000 से अधिक न्यूयॉर्कवासी एक साथ नारे लगा रहे थे–'New York is not for sale' – न्यूयॉर्क बिकाऊ नहीं है।

- जब ज़ोहरान ममदानी मंच पर आए, तो शोर किसी लहर की तरह उठा। जो कुछ आगे हुआ, वह एक चुनावी भाषण से ज्यादा एक घोषणापत्र था– एक सशक्त घोषणा कि शहर को 'भ्रष्ट नेताओं और उनके अरबपति संरक्षकों' से वापस छीनना होगा। 'यह शहर हमारा है,' उन्होंने कहा, उनकी आवाज़ नम हवा में गूंज उठी, 'डेवलपर्स का नहीं, हेज फंड्स का नहीं, सुपर PACs का नहीं– 'न्यूयॉर्क बिकाऊ नहीं है।' और भीड़ गर्जना कर उठी।

बाहरी से अग्रणी तक : एक साल पहले ममदानी का अभियान लगभग फुसफुसाहट की तरह शुरू हुआ था– न कैमरे, न सुर्खियाँ, न पैसा। सर्वेक्षणों में उनका नाम मुश्किल से दर्ज होता था। 'हम 'किसी और' के साथ बराबरी पर थे,' उन्होंने हँसते हुए कहा। लेकिन सतह के नीचे कुछ उबल रहा था– थके हुए, नाराज़ मेहनतकश लोगों का आंदोलन, जिन्हें दोनों पार्टियों ने नज़रअंदाज़ किया था। ये लोग थे– डिलीवरी ड्राइवर, नर्सें, शिक्षक, नाइट शिफ्ट सफाईकर्मी–जो बारह घंटे की ड्यूटी के बाद भी दरवाजे खटखटाने और फोन कॉल करने निकल पड़ते थे। उनकी मेहनत का फल जून में मिला जब ममदानी ने पूर्व गवर्नर 'एंड्रयू क्यूमो' को 13 अंकों से हरा दिया–जो न्यूयॉर्क के किसी भी डेमोक्रेटिक प्राइमरी में अब तक की सबसे बड़ी जीत थी।

- अब 90,000 स्वयंसेवकों और 10 लाख से अधिक मतदाताओं तक पहुंच के साथ, उनका अभियान 'विद्रोही राजनीति' का जीवंत उदाहरण बन गया है– यह दिखाने वाला कि निराशा कितनी तेजी से जनशक्ति में बदल सकती है।

मेहनतकशों का विद्रोह : ममदानी का आंदोलन शहर के उन भूले–बिसरे कोनों में जन्मा–

- ब्रॉन्क्स की फोर्डहैम रोड, क्वींस की हिलसाइड एवेन्यू, और ब्रुकलिन के फ्लैटबुश के तंग अपार्टमेंट्स में।
- इसने ट्रम्प समर्थकों और आजीवन डेमोक्रेट्स दोनों को जोड़ा–किसी विचारधारा से नहीं, बल्कि साझा संघर्ष से।
- उन्हें किसी ऐसी व्यवस्था पर भरोसा नहीं था जो समाधान देने का नाटक भी करती हो, ममदानी ने कहा। किराया बहुत ज्यादा

न्यूयॉर्क बिकाऊ नहीं है : सबसे पहले रोशनी जली-हजारों लाइटें, एक-एक कर फॉरेस्ट हिल्स स्टेडियम में ऐसे चमक उठीं जैसे किसी शहरी आकाश में तारे टिमटिमा रहे हों। उनकी चमक के नीचे 13,000 से अधिक न्यूयॉर्कवासी एक साथ नारे लगा रहे थे -न्यूयॉर्क बिकाऊ नहीं है। जब ज़ोहरान ममदानी मंच पर आए, तो शोर किसी लहर की तरह उठा। जो कुछ आगे हुआ, वह एक चुनावी भाषण से ज्यादा एक घोषणापत्र था- एक सशक्त घोषणा कि शहर को 'भ्रष्ट नेताओं और उनके अरबपति संरक्षकों' से वापस छीनना होगा। 'यह शहर हमारा है,' उन्होंने कहा, उनकी आवाज़ नम हवा में गूंज उठी, 'डेवलपर्स का नहीं, हेज फंड्स का नहीं, सुपर PACs का नहीं- 'न्यूयॉर्क बिकाऊ नहीं है।' और भीड़ गर्जना कर उठी। बाहरी से अग्रणी तक : एक साल पहले ममदानी का अभियान लगभग फुसफुसाहट की तरह शुरू हुआ था- न कैमरे, न सुर्खियाँ, न पैसा। सर्वेक्षणों में उनका नाम मुश्किल से दर्ज होता था। 'हम 'किसी और' के साथ बराबरी पर थे,' उन्होंने हँसते हुए कहा। लेकिन सतह के नीचे कुछ उबल रहा था- थके हुए, नाराज़ मेहनतकश लोगों का आंदोलन, जिन्हें दोनों पार्टियों ने नज़रअंदाज़ किया था।

था, राशन महंगा था, बच्चों की देखभाल असंभव थी- और दो-तीन नौकरियां करने पर भी गुज़ारा नहीं होता था। उनका संदेश 'लेफ्ट' या 'राइट' का नहीं था- वह था 'जीवित रहने और गरिमा का संदेश।'

- जब आप हर न्यूयॉर्कवासी के लिए जगह बनाने वाला गठबंधन बनाते हैं, उन्होंने कहा, 'तो आप एक अपार शक्ति पैदा करते हैं।'

अरबपतियों का शहर : अपने भाषण में ममदानी बार-बार एक नैतिक रेखा खींचते रहे- जनता बनाम सत्ता। उन्होंने किसी दाता का नाम नहीं लिया, पर 'आधुनिक अमेरिका के लुटेरे सरदारों -हेज फंड मालिकों और रियल एस्टेट टाइकूनों-पर तीखा प्रहार किया, जो 'सुपर PACs में उतना दान देते हैं जितना हम कभी टैक्स नहीं वसूल सकते।'

- बहुत लंबे समय से आज़ादी केवल उन्हीं की रही है जो उसे खरीद सकते हैं,' उन्होंने गरजते हुए कहा।
- अगर डोनाल्ड ट्रम्प के अरबपति समर्थक सोचते हैं कि वे शहर का भविष्य खरीद लेंगे-तो हमारे पास कुछ और ज्यादा ताकतवर है- जनता का आंदोलन।
- यह जनवाद (पॉपुलिज़्म) कविता से लिपटा हुआ था-वर्ग संघर्ष की वह भाषा जो न्यूयॉर्क जैसे शहर के लिए नई लेकिन परिचित थी।

नीति के रूप में वादा : उत्साह के बीच भी ममदानी का भाषण ठोस नीति प्रस्तावों से भरा था- एक तरह का 'शहरी न्यू डील'।

- दो मिलियन किरायेदारों के लिए किराया फ्रीज़ करना।
- सारी सार्वजनिक ज़मीन पर सस्ते घर बनाना। बस किराया समाप्त करना और परिवहन प्रणाली का आधुनिकीकरण।
- कामकाजी माता-पिताओं के लिए मुफ्त सार्वभौमिक चाइल्डकेयर।
- किसी भी न्यूयॉर्कवासी को जीवन जीने की बुनियादी जरूरतों से वंचित नहीं किया जाना चाहिए,' उन्होंने कहा।
- सरकार को गरिमा देनी चाहिए और गरिमा, मेरे दोस्तों, आज़ादी का ही दूसरा नाम है। भीड़ Dignity Now!- गरिमा अभी! के नारे में बदल गई।

घृणा के खिलाफ खड़ा होना : चुनाव के आखिरी दौर में ममदानी को 'इस्लामोफ़ोबिया' के हमलों का सामना करना पड़ा- कुछ खुले तौर पर, कुछ छिपे हुए रूप में।

- बिना नाम लिए उन्होंने एंड्रयू क्यूमो, एरिक एडम्स और कर्टिस स्लिवा पर आरोप लगाया कि उन्होंने इस चुनाव को उनके धर्म पर जनमत-संग्रह बना दिया है।
- वे इसे इस बात पर केंद्रित कर रहे हैं कि मैं कौन हूं, न कि हम किसके लिए लड़ रहे हैं,' उन्होंने कहा।
- हम उस विचार की रक्षा करने पर मजबूर किए जा रहे हैं कि क्या एक मुसलमान भी इस शहर का नेतृत्व कर सकता है।
- उन्होंने इसे 'बड़े पैसों वाले दाताओं और बदनाम राजनेताओं' की साजिश बताया जो जनता की कल्पनाशक्ति को सीमित करना चाहते हैं।
- वे आपको छोटे सपने देखने को कहते हैं,' उन्होंने कहा, 'क्योंकि एक नए न्यूयॉर्क की कल्पना उनके मुनाफे के लिए खतरा है।

रूज़वेल्ट की गूंज : इतिहास के प्रति ममदानी का झुकाव हमेशा से रहा है और उस रात उन्होंने 1936 में फ्रैंकलिन डी. रूज़वेल्ट के मैडिसन स्क्वेयर गार्डन भाषण का ज़िक्र किया- जिसमें उन्होंने 'स्वार्थ और सत्ता की लालसा की ताकतों' की निंदा की थी।

- ऐसी सरकार का युग समाप्त होना चाहिए जो किसी संकट को बहुत बड़ा या किसी समस्या को बहुत छोटा समझती है, ममदानी ने कहा।
- हमें उतनी ही महत्वाकांक्षी सरकार चाहिए जितनी हमारे विरोधी हैं। उन्होंने शहर की नैतिक असफलताओं की सूची गिनाई- हर चौथा नागरिक गरीबी में 1,50,000 बेघर छात्र और यूनियन परिवार जो खुद का घर खरीदने में असमर्थ हैं।
- हम उस शहर से बेदखल नहीं होंगे जिसे हमने बनाया है,' उन्होंने वादा किया।
- भीड़ की तालियाँ गूंज उठीं-Not for sale! Not for sale!- 'बिकाऊ नहीं! बिकाऊ नहीं!'

अंतिम आह्वान : सामान्य चुनाव से केवल नौ दिन पहले, ममदानी ने अपने थके हुए स्वयंसेवकों की ओर देखा।

- मुझे पता है, आप थके हुए हैं,' उन्होंने धीरे से कहा।
- फिर आवाज़ ऊँची करते हुए बोले- 'फिर भी, मैं आपसे और मांगता हूं।'
- इशारे पर हजारों लोगों ने अपने फोन उठाए, और पूरा स्टेडियम रोशनी से जगमगा उठा- 'ऐसी रोशनी जलाओ जो किसी अंधकार को मिटा दे, 'उन्होंने कहा।'
- फिर उनका अंतिम नारा गूंजा- '4 नवम्बर को, हम खुद को आज़ाद करेंगे।'उन्होंने रूज़वेल्ट के शब्दों को अपने ढंग से दोहराया- इतिहास गवाह रहे कि स्वार्थ और सत्ता की हवस की ताकतें यहाँ अपने मुकाबिल से मिलीं- और सिटी हॉल में, उन्होंने अपने मालिक से।

शहर की आत्मा : जब संगीत गूंजा और भीड़ ने फिर नारे लगाए, उनके शब्द हवा में गूंजते रहे- नारे से ज्यादा, एक भविष्यवाणी की तरह।

- यह भाषण तमाशा नहीं, 'आस्था' का प्रमाण था- यह विश्वास कि सरकार एक बार फिर गरिमा का साधन बन सकती है।
- दुनिया बदल रही है,' ममदानी ने अंत में कहा। 'सवाल यह है कि इसे कौन बदलेगा।' और अगर फोन की रोशनी की वह लहर कोई संकेत थी, तो हजारों न्यूयॉर्कवासी पहले ही अपना जवाब- और अपना शहर-चुन चुके थे। 'क्योंकि न्यूयॉर्क बिकाऊ नहीं है।'

(डॉ. सतीश मिश्रा वरिष्ठ पत्रकार और अनुभवी राजनीतिक विश्लेषक हैं)

अफगानिस्तान : बदलते समीकरणों में भारत की कूटनीतिक

अफगानिस्तान एक बार फिर अंतरराष्ट्रीय राजनीति के केंद्र में है। कभी 'ग्रेट गेम' का मैदान रहा यह देश आज अमेरिका की वापसी, तालिबान की सत्ता, चीन की बढ़ती दखलंदाजी और भारत की नई कूटनीतिक सक्रियता का संगम बन गया है। बीते कुछ महीनों में काबुल और नई दिल्ली के बीच संपर्कों में जो हलचल दिखी है, उसने यह संकेत दिया है कि भारत अब अपने पारंपरिक संकोचों से बाहर आ रहा है और अफगान सवाल पर व्यावहारिक नीति अपनाने की कोशिश कर रहा है।

डॉ. सलीम खान

तालिबान का बदला चेहरा या बदला एजेंडा : तालिबान के शासन को अब चार वर्ष होने को हैं। 2021 में अमेरिका की अफगानिस्तान से वापसी के बाद यह संगठन सत्ता में तो आ गया, लेकिन वैधता का संकट उसके गले की हड्डी बना रहा। महिलाएं, शिक्षा, मानवाधिकार और अल्पसंख्यक-इन सवालों पर तालिबान की नीति आज भी पुराने दौर जैसी कठोर और अस्वीकार्य है। फिर भी, तालिबान यह भलीभांति जानता है कि अंतरराष्ट्रीय समर्थन के बिना अफगानिस्तान की अर्थव्यवस्था चलाना असंभव है। यही कारण है कि काबुल अब भारत, रूस, चीन और ईरान जैसे देशों के साथ नज़दीकी बनाने की कोशिश कर रहा है। तालिबान के वरिष्ठ प्रतिनिधियों की हाल की भारत-भ्रमण यात्रा को इसी क्रम में देखा जा रहा है। दिल्ली में भले इसे 'ट्रैक-टू डिप्लोमेसी' कहा गया हो, लेकिन यह साफ है कि अफगान सरकार भारत के साथ सीधा संवाद चाहती है।

भारत की रणनीति में व्यावहारिक मोड़ : भारत लंबे समय तक अफगानिस्तान में लोकतांत्रिक संस्थाओं और विकास परियोजनाओं का समर्थक रहा है। काबुल से लेकर कंधार तक भारत ने सड़कों, बांधों, संसद भवन और अस्पतालों का निर्माण किया- यह 'सॉफ्ट पावर' भारत की सबसे बड़ी पूँजी रही। लेकिन तालिबान की वापसी के बाद नई दिल्ली ने शुरुआती झिझक में अपने मिशन बंद कर दिए और प्रतीक्षा की नीति अपनाई।

भारत लंबे समय तक अफगानिस्तान में लोकतांत्रिक संस्थाओं और विकास परियोजनाओं का समर्थक रहा है। काबुल से लेकर कंधार तक भारत ने सड़कों, बांधों, संसद भवन और अस्पतालों का निर्माण किया- यह 'सॉफ्ट पावर' भारत की सबसे बड़ी पूँजी रही। लेकिन तालिबान की वापसी के बाद नई दिल्ली ने शुरुआती झिझक में अपने मिशन बंद कर दिए और प्रतीक्षा की नीति अपनाई।

अब परिस्थितियाँ बदल रही हैं। तालिबान की सत्ता स्थिर होती दिख रही है, और अफगान भूभाग में चीन-पाकिस्तान की पकड़ मज़बूत होती जा रही है। इन दोनों के साझा हित न केवल सुरक्षा बल्कि आर्थिक विस्तार से भी जुड़े हैं- विशेषकर बेल्ट ऐंड रोड इनिशिएटिव के तहत।

भारत समझ गया है कि यदि उसने सक्रिय भूमिका नहीं निभाई, तो अफगानिस्तान पूरी तरह चीन-पाकिस्तान धुरी में समा जाएगा। यही कारण है कि भारत अब अपने पुराने निवेश और संपर्कों को धीरे-धीरे पुनर्जीवित करने की कोशिश में है।

अफगानिस्तान आज चीन के लिए अवसरों का देश है- खनिज संपदा, रणनीतिक स्थिति और मध्य एशिया तक पहुंच का द्वार। चीन ने तालिबान शासन को औपचारिक मान्यता तो नहीं दी है, लेकिन आर्थिक सहयोग के नाम पर वह लगातार जाल बुन रहा है।

अब परिस्थितियाँ बदल रही हैं। तालिबान की सत्ता स्थिर होती दिख रही है, और अफगान भूभाग में चीन-पाकिस्तान की पकड़ मज़बूत होती जा रही है। इन दोनों के साझा हित न केवल सुरक्षा बल्कि आर्थिक विस्तार से भी जुड़े हैं- विशेषकर बेल्ट ऐंड रोड इनिशिएटिव के तहत।

भारत समझ गया है कि यदि उसने सक्रिय भूमिका नहीं निभाई, तो अफगानिस्तान पूरी तरह चीन-पाकिस्तान धुरी में समा जाएगा। यही कारण है कि भारत अब अपने पुराने निवेश और संपर्कों को धीरे-धीरे पुनर्जीवित करने की कोशिश में है।

काबुल के रास्ते बीजिंग और इस्लामाबाद की भूमिका : अफगानिस्तान आज चीन के लिए अवसरों का देश है- खनिज संपदा, रणनीतिक स्थिति और मध्य एशिया तक पहुंच का द्वार। चीन ने तालिबान शासन को औपचारिक मान्यता तो नहीं दी है, लेकिन आर्थिक सहयोग के नाम पर वह लगातार जाल बुन रहा है।

पाकिस्तान, जो कभी तालिबान का सबसे बड़ा संरक्षक था, अब खुद उसके हाथों असहज महसूस कर रहा है। टीटीपी (तहरीक-ए-तालिबान पाकिस्तान) की गतिविधियाँ इस्लामाबाद के लिए सिरदर्द बन चुकी हैं।

इन हालात में चीन और पाकिस्तान दोनों चाहते हैं कि तालिबान कुछ हद तक अंतरराष्ट्रीय स्वीकृति पा ले ताकि अफगानिस्तान स्थिर दिखे और उनके आर्थिक हित सुरक्षित रहें।

अमेरिका की वापसी और उसका साया : अमेरिका की वापसी के चार साल बाद भी वाशिंगटन अफगान संकट से पूरी तरह बाहर नहीं है। वह अब भी आतंकवाद, मानवाधिकार और नशीले पदार्थों के नियंत्रण के सवाल पर तालिबान पर दबाव बनाए हुए है। लेकिन अमेरिका का प्रभाव घटा है और उसका ध्यान अब चीन-प्रतिरोध की नीति पर केंद्रित है।

इस पृष्ठभूमि में भारत के लिए अवसर और चुनौती दोनों हैं- एक ओर अमेरिका भारत को क्षेत्रीय संतुलन के लिए उपयोगी साझेदार मानता है, दूसरी ओर अफगान प्रश्न पर भारत को स्वायत्त नीति रखनी होगी ताकि उसकी छवि किसी पश्चिमी ब्लॉक की 'एक्सटेंशन' न बन जाए।

भारत के सामने चुनौतियाँ : अफगानिस्तान में भारत की सबसे बड़ी पूँजी उसकी 'नैतिक वैधता' रही है- भारत को वहाँ कभी भी आक्रामक या हस्तक्षेपकारी ताकत के रूप में नहीं देखा गया। अफगान जनता आज भी भारतीय सहायता परियोजनाओं और शिक्षा-स्वास्थ्य में भारत की भूमिका को याद करती है।

लेकिन नई स्थिति में यह भरोसा तभी टिक सकता है जब भारत तालिबान से संवाद करते हुए भी अपने मूल्यों से समझौता न करे।

महिला शिक्षा, अल्पसंख्यक सुरक्षा, और मानवाधिकार जैसे मुद्दों पर भारत को अपनी 'सॉफ्ट पॉवर' की पहचान बनाए रखनी होगी।

साथ ही, सुरक्षा का सवाल भी बड़ा है। अफगान भूमि से इस्लामिक स्टेट-खुरासान जैसे समूहों की गतिविधियाँ भारत की चिंता का कारण हैं। पाकिस्तान की सीमा पर बढ़ती अस्थिरता का असर जम्मू-कश्मीर तक पहुँच सकता है। ऐसे में, तालिबान शासन के साथ सीमित लेकिन स्पष्ट संवाद भारत के लिए रणनीतिक आवश्यकता बन गया है।

एक बदलते एशिया की तस्वीर : आज एशिया में शक्ति संतुलन तेजी से बदल रहा है। चीन की आर्थिक ताकत, रूस का पुनरुत्थान, ईरान का उभार और अमेरिका का सिमटता प्रभाव-इन सबके बीच भारत एक 'संतुलक' भूमिका निभाने की स्थिति में है। अफगानिस्तान इस संतुलन का 'परीक्षण-क्षेत्र' बन गया है, जहाँ हर शक्ति अपनी उपस्थिति दर्ज कराना चाहती है।

भारत के लिए यह समय भावनात्मक या वैचारिक रुख से अधिक व्यावहारिक कूटनीति का है- ऐसी नीति जिसमें न तो नैतिकता छूटे, न राष्ट्रीय हित।

संवाद ही स्थिरता की कुंजी : अफगानिस्तान में स्थिरता तभी संभव है जब क्षेत्रीय और अंतरराष्ट्रीय शक्तियाँ इसे एक साझा जिम्मेदारी मानें।

भारत यदि वहां संवाद, विकास और संतुलन के रास्ते पर चलता है, तो वह न केवल अपनी ऐतिहासिक भूमिका निभाएगा बल्कि दक्षिण एशिया में स्थायी शांति की प्रक्रिया में निर्णायक योगदान भी दे सकता है।

तालिबान चाहे जितना भी बदलने का दावा करे, असली परीक्षा उसके शासन की नहीं बल्कि दुनिया की कूटनीति की है-क्या दुनिया उसे बदलने की दिशा दे पाएगी, या फिर इतिहास एक बार फिर अपने पुराने चक्र में लौटेगा।

एक वैज्ञानिक से मीडिया व्यक्ति बने डॉ. सलीम खान सार्वजनिक नीति से जुड़े मुद्दों पर राजनीतिक विश्लेषक और टिप्पणीकार हैं। वे मुंबई स्थित मीडिया चैनल एनवीएन (NVN) के संपादक हैं।

आरएसएस : नैतिक अग्रदूत से राजनीतिक ठेकेदार तक

हरीश खरे

सिर्फ इसलिए कोई राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) से क्यों डरे कि उसने अपने अस्तित्व के 100 वर्ष पूरे कर लिए हैं? खाकी चमक-दमक और नियमित शाखा अभ्यासों से परे आज का संघ किसी भी बड़े, बोझिल संगठन की तरह लगता है- न कुछ असाधारण, न प्रेरक। अपने शताब्दी वर्ष पर नागपुर स्थित यह भाईचारा अब वह नैतिक अधिकार या वैचारिक गहराई नहीं रखता जिसका वह कभी दावा करता था।

दशकों तक संघ ने स्वयं को राष्ट्रीय नैतिकता, देशभक्ति और आदर्शवाद का संरक्षक बताया। उसने राष्ट्रवाद पर एकाधिकार का दावा किया। परंतु अपने दायरे से बाहर बहुत कम लोगों ने इस नैतिक दावे को स्वीकार किया। संघ का आदर्शवाद से अवसरवाद की ओर पतन 1998 से शुरू हुआ, जब अटल बिहारी वाजपेयी गठबंधन सरकार के प्रधानमंत्री बने।

मोड़ बिंदु-सिद्धांतों पर सत्ता की जीत : वाजपेयी सरकार बनने पर संघ प्रमुख राजेंद्र सिंह (राज्जू भैया) ने इसे 'हिंदुत्व समर्थक शक्तियों के प्रति पूर्वाग्रह की समाप्ति' बताया। यही वह क्षण था जब सत्ता की नज़दीकी से चकाचौंध हुआ संघ राजनीतिक लाभ को नैतिक विजय समझने लगा। तेरह महीनों में सरकार गिर गई, लेकिन संघ अब भाजपा की सुविधाजनक और समझौतेबाज़ राजनीति में बंध चुका था।

इसके बाद से संघ नैतिक मार्गदर्शक रहना बंद हो गया। वह राजनीतिक 'फिक्सर' बन गया—वाजपेयी या आडवाणी जब संकट में पड़ते, तो संघ उनकी ढाल बनता। एनडीए शासन (1998-2004) के दौरान संघ ने यह सुनिश्चित किया कि भाजपा, विश्व हिंदू परिषद और भारतीय मज़दूर संघ के बीच के झगड़े सरकार को शर्मिंदा न करें। अशोक सिंघल और दत्तोपंत ठेंगड़ी जैसे आलोचकों को चुप रहने को कहा गया।

मोदी युग-संरक्षक से अधीनस्थ तक : 2014 के बाद नरेंद्र मोदी के शासनकाल में संघ ने नैतिक निगरानी का दिखावा भी छोड़ दिया। अब वह 'राष्ट्र' और 'राष्ट्रवाद' के जयघोष में व्यस्त है, जबकि कॉरपोरेट घराने राष्ट्रीय संपदा पर कब्जा जमाए बैठे हैं। संघ के कार्यकर्ताओं ने नए तरीकों से लाभ

उठाने की कला सीख ली है, और वरिष्ठ नेता पुराने संरक्षण-तंत्र के दलाल बन गए हैं।

संघ का नेतृत्व अब न तो शासन की कमजोरियों को देखता है, न भ्रष्टाचार पर आवाज़ उठाता है—'हिंदू प्रभुत्व' के भ्रम में मदमस्त। कॉरपोरेट भारत की धनसंपदा और चतुराई ने उस पुराने नैतिक लोमड़ी को बिल से बहुत दूर भटका दिया है।

आज का संघ एक कॉरपोरेट महासंघ जैसा दिखता है-फूला हुआ, भारी-भरकम, अंदरूनी रूप से बंटा हुआ। फिक्की की तरह, यह भी परस्पर विरोधी हितों, निष्ठाओं और अहंकारों के बीच झूलता रहता है। बचा है तो बस उसका खोखला रहस्यवाद: गोपनीयता, पदानुक्रम और आज्ञाकारिता की रस्में-वे सब प्रतीक

संघ का नेतृत्व अब न तो शासन की कमजोरियों को देखता है, न भ्रष्टाचार पर आवाज़ उठाता है—'हिंदू प्रभुत्व' के भ्रम में मदमस्त। कॉरपोरेट भारत की धनसंपदा और चतुराई ने उस पुराने नैतिक लोमड़ी को बिल से बहुत दूर भटका दिया है। आज का संघ एक कॉरपोरेट महासंघ जैसा दिखता है-फूला हुआ, भारी-भरकम, अंदरूनी रूप से बंटा हुआ। फिक्की की तरह, यह भी परस्पर विरोधी हितों, निष्ठाओं और अहंकारों के बीच झूलता रहता है। बचा है तो बस उसका खोखला रहस्यवादः गोपनीयता, पदानुक्रम और आज्ञाकारिता की रस्में-वे सब प्रतीक जो किसी भी पंथ या संगठन में मिलते हैं, चाहे वह स्वामीनारायण हो, राधास्वामी या रोटरी। विडंबना यह है कि जितना मोदी और शाह संघ को प्रतीकात्मक अवशेष बनाते हैं, उतना ही विपक्ष उस पर हमलावर होता है। राहुल गांधी ने 'एंटी-आरएसएस' रुख को नैतिक मंच बना लिया है—जो अंततः मोदी के ही काम आता है, क्योंकि वे चाहते हैं कि आलोचना नागपुर पर हो, न कि उनकी सरकार पर। भाजपा ने अपनी तरफ से संघ को राजनीतिक सहारा बना लिया है। सत्ता के मंच पर संघ 'बुरा पुलिसवाला' बनता है, जबकि वाजपेयी—या अब मोदी—'उदार हिंदुत्व' का चेहरा बनकर सामने आते हैं।

जो किसी भी पंथ या संगठन में मिलते हैं, चाहे वह स्वामीनारायण हो, राधास्वामी या रोटरी।

एक खोखला आभामंडल : अब यह व्यापक संघ केवल अपने संगठनात्मक साम्राज्य को बनाए रखने के लिए अस्तित्व में है। उसने अनुशासन को मतवाद और आज्ञाकारिता को सद्गुण बना दिया है। 'आध्यात्मिक राष्ट्रवाद' की बात करने वाला संघ अब मोदी-शाह जोड़ी के हाथों निष्क्रिय हो चुका है। फिर भी, यह एक छोटा-सा राजनीतिक काम करता है—उदारवादियों के आक्रोश के लिए एक सुविधाजनक बिजली-गिराने का खंभा बनकर।

पिछले वर्षों में संघ ने झूठी बहसें छेड़ने की कला सीख ली है—जैसे संविधान की प्रस्तावना से 'समाजवाद' और 'धर्मनिरपेक्षता' हटाने का सुझाव देना। महीनों तक उदारवादी और टीवी स्टूडियो इस पर भड़कते रहे, जबकि संसद में सरकार ने स्पष्ट किया कि ऐसा कोई संशोधन प्रस्तावित नहीं है। संघ ने अपनी शरारत का आनंद लिया—माहौल गरमाया, असली सत्ता रायसीना हिल में आराम से बैठी रही।

विडंबना यह है कि जितना मोदी और शाह संघ को प्रतीकात्मक अवशेष बनाते हैं, उतना ही विपक्ष उस पर हमलावर होता है। राहुल गांधी ने 'एंटी-आरएसएस' रुख को नैतिक मंच बना लिया है—जो अंततः मोदी के ही काम आता है, क्योंकि वे चाहते हैं कि आलोचना नागपुर पर हो, न कि उनकी सरकार पर।

उपयोगी खलनायक : भाजपा ने अपनी तरफ से संघ को राजनीतिक सहारा बना लिया है। सत्ता के मंच पर संघ 'बुरा पुलिसवाला' बनता है, जबकि वाजपेयी—या अब मोदी—'उदार हिंदुत्व' का चेहरा बनकर सामने आते हैं। मध्यम वर्ग, मीडिया और व्यापार जगत भी इस अच्छे-बुरे पुलिसवाले के नाटक को सहजता से स्वीकार करते हैं।

चुनावों के समय भाजपा अपनी 'संगठनात्मक ताकत' का ढिंढोरा पीटती है—संघ के कार्यकर्ताओं को अपनी व्यापक पहुंच और अनुशासन का प्रमाण बताकर। 'मेरे पास आरएसएस है' भाजपा का यह दावा मानो फिल्म दीवार की प्रसिद्ध पंक्ति 'मेरे पास माँ है' की राजनीतिक प्रतिध्वनि हो।

निष्ठा का प्रतिफल : इस अधीनता के बदले संघ को प्रतिष्ठा के कई प्रतीक मिले हैं—झंडेवालान में भव्य नया मुख्यालय, मोहन भागवत को जेड + सुरक्षा, अयोध्या के राममंदिर में शिलान्यास और प्राण प्रतिष्ठा का सम्मान, 'न्यू इंडिया' की तीसरी सबसे शक्तिशाली संस्था का दर्जा। अफसर स्थानांतरण के लिए आशीर्वाद लेने आते हैं। और इसके एक पूर्व स्वयंसेवक को उपराष्ट्रपति पद तक पहुंचने का अवसर मिला।

राष्ट्रवादी आदर्शवाद के सौ वर्षीय 'बैंक खाते' के लिए यह बहुत मामूली ब्याज है—पर इतना कि 'कमिसार' संतुष्ट रहें। प्रासंगिकता की यह कीमत नैतिक दिवालियापन बनकर चुकाई गई है।

एक खोई हुई धरोहर : सौ साल पर संघ किसी भी रूपांतरकारी कल्पना से रहित दिखता है। भगवा इतिहासकारों की कमी नहीं जो उसके 'राष्ट्रीय पुनर्जागरण' में योगदान का गुणगान करते हैं। परंतु सबसे कल्पनाशील व्यक्ति भी शायद यह नहीं बता पाएगा कि के.बी. हेडगेवार या एम.एस. गोलवलकर आज के इस संघ को देखकर क्या सोचते।

जो आंदोलन कभी नैतिक उत्थान के लिए बना था, वह अब राजनीतिक ठेकेदारी में सिमट गया है—आदर्श नहीं, छवि प्रबंधन उसका काम है। उसका अनुशासन अब अनुरूपता में बदल गया है, उसका राष्ट्रवाद—सिर्फ भाषणबाजी में। संघ ने चरित्र निर्माण का वादा किया था, करियर निर्माण का नहीं। एक सदी बाद वह ऐसे तंत्र का मुखिया है जहां भक्ति सद्गुण का स्थान ले चुकी है और अवसरवाद को देशभक्ति समझा जाता है। उसके नेताओं के पास अब इमारतें हैं, सुरक्षा है, और मंच हैं—पर कोई नैतिक संदेश नहीं।

शायद यही संघ की शताब्दी का असली दुख है—यह नहीं कि अब यह भय उत्पन्न करता है, बल्कि यह कि अब यह प्रेरणा नहीं देता।

(हरीश खरे वरिष्ठ पत्रकार हैं। वे कई प्रतिष्ठित समाचार पत्रों में संपादकीय पदों पर रहे हैं और सार्वजनिक मुद्दों पर जाने-माने विश्लेषक हैं)

नेहरू की महान विरासत की प्रासंगिकता

आज जब मोदी सरकार भारत को 'विश्वगुरु' बताने का दावा करती है, तो यह याद रखना जरूरी है कि वह सम्मान और नैतिक प्रतिष्ठा हमें आज नहीं मिलती जो भारत को उस दौर में मिली थी जब जवाहरलाल नेहरू हमारे प्रधानमंत्री थे। औपनिवेशिक शासन ने भारत को आर्थिक रूप से कंगाल बनाकर छोड़ा था। उस समय भारत निर्धन और विकासशील था, लेकिन नेहरू की दूरदर्शिता और नैतिक नेतृत्व ने भारत को वैश्विक सम्मान दिलाया। आज हम दुनिया की पाँच सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में गिने जाते हैं, एक महाशक्ति के रूप में उभर रहे हैं, फिर भी वह नैतिक ऊँचाई हमारे पास नहीं है जो नेहरू युग में थी।

आज जब हम 'ग्लोबल साउथ' और उसमें भारत की अग्रणी भूमिका की बात करते हैं, तो यह न भूलें कि इस अवधारणा को पहली बार दुनिया के सामने लाने का श्रेय नेहरू को ही जाता है। 1947 का एशियन रिलेशंस कॉन्फ्रेंस और 1955 का बांडुंग सम्मेलन इस बात के प्रतीक थे कि एशिया और अफ्रीका के देश एकजुट होकर उपनिवेशवाद और शीतयुद्ध की राजनीति का सामना करें। इन पहलों ने दक्षिण-दक्षिण सहयोग (South-South Cooperation) और बाद में नये अंतरराष्ट्रीय आर्थिक ढाँचे की नींव रखी।

आर्थिक आत्मनिर्भरता, जो मूलत: एक घरेलू लक्ष्य थी, नेहरू के नेतृत्व में विदेश नीति का एक उपकरण भी बनी। उन्होंने पश्चिमी पूँजीवाद और सोवियत साम्यवाद, दोनों को अस्वीकार करते हुए 'मिश्रित अर्थव्यवस्था' का तीसरा रास्ता चुना। भारत ने अमेरिका, सोवियत संघ और पश्चिमी यूरोप जैसे विविध देशों से तकनीकी सहयोग लेकर औद्योगिक विकास की दिशा में कदम बढ़ाया, लेकिन वैचारिक निर्भरता से बचा।

1950 में योजना आयोग की स्थापना, 1956 की औद्योगिक नीति संकल्पना, और 1950 में कोलंबो योजना में भारत की भागीदारी—ये सब दर्शाते हैं कि नेहरू के समय विकास और कूटनीति एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए थे।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि : 1947 में जब भारत स्वतंत्र हुआ, तब उसके सामने कठिन प्रश्न थे—क्या एक गरीब, विभाजित देश अपनी स्वतंत्रता को बनाए रख पाएगा? क्या वह विश्व की दो महाशक्तियों—अमेरिका और सोवियत संघ—के बीच अपने लिए स्वतंत्र स्थान बना सकेगा?

प्रधानमंत्री और विदेश मंत्री दोनों की भूमिका निभाते हुए नेहरू ने ऐसी दृष्टि प्रस्तुत की जो नैतिक आदर्शों और व्यवहारिक कूटनीति का संगम थी। उन्होंने भारत को केवल वैश्विक घटनाओं का अनुयायी नहीं, बल्कि एक नैतिक शक्ति के रूप में देखा जो पूर्व और पश्चिम के बीच सेतु का काम कर सके।

शीतयुद्ध के दौर में जब दुनिया दो ध्रुवों में बँटी हुई थी, नेहरू ने कहा कि भारत की स्वतंत्रता तभी सार्थक होगी जब वह किसी शक्ति गुट का उपग्रह न बने। भारत को स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता रखनी चाहिए और उसे शांति, निरस्त्रीकरण

1947 में जब भारत स्वतंत्र हुआ, तब उसके सामने कठिन प्रश्न थे—क्या एक गरीब, विभाजित देश अपनी स्वतंत्रता को बनाए रख पाएगा? क्या वह विश्व की दो महाशक्तियों—अमेरिका और सोवियत संघ—के बीच अपने लिए स्वतंत्र स्थान बना सकेगा? प्रधानमंत्री और विदेश मंत्री दोनों की भूमिका निभाते हुए नेहरू ने ऐसी दृष्टि प्रस्तुत की जो नैतिक आदर्शों और व्यवहारिक कूटनीति का संगम थी। उन्होंने भारत को केवल वैश्विक घटनाओं का अनुयायी नहीं, बल्कि एक नैतिक शक्ति के रूप में देखा जो पूर्व और पश्चिम के बीच सेतु का काम कर सके। शीतयुद्ध के दौर में जब दुनिया दो ध्रुवों में बँटी हुई थी, नेहरू ने कहा कि भारत की स्वतंत्रता तभी सार्थक होगी जब वह किसी शक्ति गुट का उपग्रह न बने। भारत को स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता रखनी चाहिए और उसे शांति, निरस्त्रीकरण तथा नवस्वतंत्र देशों के अधिकारों की पैरवी करनी चाहिए।

♦♦

तथा नवस्वतंत्र देशों के अधिकारों की पैरवी करनी चाहिए।

दार्शनिक आधार : नेहरू की विदेश नीति तीन प्रमुख विचारों पर आधारित थी—मानवतावादी अंतरराष्ट्रीयता पर विश्वास—शांति, न्याय और समानता केवल राजनीतिक उद्देश्य नहीं बल्कि सार्वभौमिक नैतिक मूल्य हैं।

- आर्थिक आत्मनिर्भरता की आवश्यकता—उन्होंने माना कि राजनीतिक स्वतंत्रता तभी टिकाऊ होगी जब आर्थिक और तकनीकी शक्ति उसके पीछे होगी।
- लोकतंत्र की निष्ठा—यह केवल घरेलू शासन प्रणाली नहीं बल्कि अन्य देशों से व्यवहार का भी मूल सिद्धांत होना चाहिए।

इन विचारों की प्रेरणा उन्हें भारतीय सभ्यता के 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के आदर्श से मिली, साथ ही पश्चिमी उदारवाद और समाजवादी चिंतन से भी। उनकी विदेश नीति में भारतीय नैतिक परंपरा और आधुनिक यथार्थवाद का अद्भुत समन्वय था।

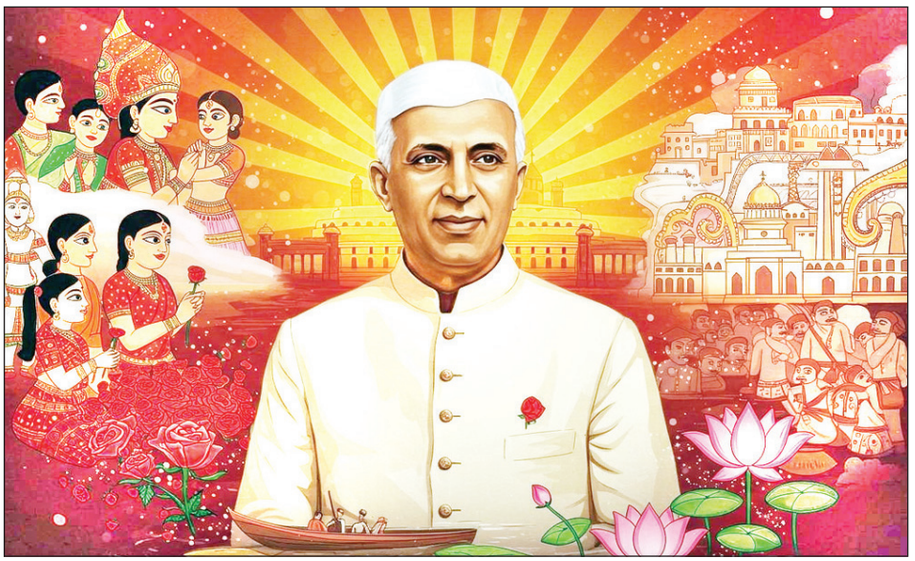

गुटनिरपेक्षता - स्वतंत्रता की खोज : नेहरू की सबसे स्थायी देन गुटनिरपेक्ष आंदोलन (Non-Alignment) थी। इसे प्राय: तटस्थता समझ लिया जाता है, जबकि नेहरू ने स्पष्ट किया था कि इसका अर्थ है—'हर मुद्दे पर स्वतंत्र रूप से निर्णय लेना।'

उन्होंने कहा था—'हम किसी भी शक्ति गुट के साथ नहीं जुड़ेंगे, लेकिन उन सबके साथ सहयोग करेंगे जो शांति और मानव प्रगति के लिए काम कर रहे हैं।'

इस नीति के कारण भारत शीतयुद्ध की सैन्य संधियों—SEATO और CENTO—से दूर रह सका। भारत ने अमेरिका और सोवियत संघ, दोनों से आर्थिक सहायता ली लेकिन अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता बनाए रखी।

1950 के दशक के उत्तरार्ध तक भारत विकासशील देशों की नैतिक आवाज बन चुका था। कोरियाई युद्ध, स्वेज संकट और संयुक्त राष्ट्र में निरस्त्रीकरण की बहस में भारत ने मध्यस्थता और शांति का समर्थन किया।

1961 में बेलग्रेड सम्मेलन में नेहरू, नासिर, टीटो, सुकर्णो और नक्रूमा ने मिलकर गुटनिरपेक्ष आंदोलन (NAM) की औपचारिक स्थापना की। एशिया और अफ्रीका के नवस्वतंत्र देशों ने पहली बार सामूहिक रूप से यह अधिकार जताया कि वे अपनी राह स्वयं तय करेंगे। यह क्षण विश्व राजनीति में नैतिक विजय का प्रतीक था, भले ही व्यवहार में इसकी सीमाएँ बाद में स्पष्ट हो गईं।

पंचशील और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व : यदि गुटनिरपेक्षता नेहरू की नीति का राजनीतिक स्तंभ थी, तो पंचशील उसका नैतिक आधार था। 1954 में भारत और चीन के बीच तिब्बत संबंधी समझौते के हिस्से के रूप में यह सिद्धांत सामने आया, जिसमें पाँच मूल तत्व थे—

- एक-दूसरे की संप्रभुता और क्षेत्रीय अखंडता का सम्मान।
- आक्रमण न करना।
- आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना
- समानता और परस्पर लाभ।
- शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व।

नेहरू के अनुसार, पंचशील एशियाई बुद्धि का प्रतीक था—सम्मान के आधार पर सह-अस्तित्व। 1955 के बांडुंग सम्मेलन में इसे अंतरराष्ट्रीय मान्यता मिली और बाद में संयुक्त राष्ट्र के प्रस्तावों में भी इसके भाव झलके।

भारत और विश्व - संस्थाएं और नेतृत्व : नेहरू के नेतृत्व में भारत हर प्रमुख अंतरराष्ट्रीय मंच पर सक्रिय हुआ। संयुक्त राष्ट्र में भारत ने उपनिवेशवाद के अंत, नस्लीय समानता और परमाणु निरस्त्रीकरण के पक्ष में जोरदार आवाज उठाई। कोरिया से लेकर कांगो तक, भारतीय सेनाएँ शांति स्थापना मिशनों में शामिल रहीं।

भारत कॉमनवेल्थ ऑफ नेशंस में भी सदस्य बना रहा, लेकिन समानता के आधार पर—यह नेहरू की व्यवहारिकता का उदाहरण था। उन्होंने पश्चिम के साथ सांस्कृतिक और आर्थिक संबंध बनाए रखे, पर राजनीतिक स्वतंत्रता पर कोई समझौता नहीं किया।

इसी काल में भारतीय विश्व मामलों की परिषद (ICWA) और भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद (ICCR) जैसी संस्थाएं बनीं, जिन्होंने भारत की वैचारिक और सांस्कृतिक कूटनीति को मजबूती दी।

घरेलू नीतियों से जुड़ी विदेश नीति : नेहरू के लिए विदेश नीति राष्ट्रनिर्माण

का ही विस्तार थी। औद्योगीकरण, विज्ञान-तकनीक और पंचवर्षीय योजनाएँ इस उद्देश्य से बनाई गईं कि भारत किसी पर निर्भर न रहे।

उन्होंने कहा—'सहयोग चाहिए, पर निर्भरता नहीं।' इसलिए भारत ने पश्चिम से कृषि सहायता (PL-480 कार्यक्रम) और सोवियत संघ से भारी उद्योगों के निर्माण—जैसे भिलाई इस्पात संयंत्र—दोनों में सहयोग लिया। नेहरू की समाजवादी आर्थिक नीतियों ने वैश्विक समानता के विचार को भी प्रेरित किया, जिसके परिणामस्वरूप बाद में ग्रुप ऑफ 77 और न्यायसंगत अंतरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था जैसी अवधारणाएँ उभरीं।

आलोचनाएं और चुनौतियां : नेहरू की नीतियाँ आलोचना से परे नहीं थीं। 1962 का चीन युद्ध उनके लिए सबसे बड़ा आघात था। चीन की सद्भावना पर उनका भरोसा और सैन्य तैयारी की कमी ने देश को गहरे संकट में डाल दिया। कश्मीर मुद्दे को संयुक्त राष्ट्र में ले जाने का उनका निर्णय भी विवादास्पद रहा। पाकिस्तान के पश्चिमी गुटों से जुड़ जाने से क्षेत्रीय असंतुलन पैदा हुआ।

कुछ रणनीतिक चिंतकों—जैसे के. सुब्रह्मण्यम—का मत था कि नेहरू का 'नैतिकतावाद' भारत की सामरिक यथार्थवादिता को कमजोर करता है। वहीं इतिहासकार विपिन चंद्र जैसे विद्वान मानते हैं कि नेहरू की संयमित नीति ने भारत को नैतिक वैधता दी और उसे शीतयुद्ध की खतरनाक राजनीति से दूर रखा।

आर्थिक सीमाएं, नौकरशाही का केंद्रीकरण और विदेश मंत्रालय पर नेहरू का व्यक्तिगत प्रभुत्व भी चुनौतियां थे। फिर भी, उन्होंने भारत की आवाज को उसकी भौतिक शक्ति से कहीं अधिक ऊँचाई दी—उन्होंने दिखाया कि नैतिक शक्ति भी प्रभावशाली हो सकती है।

विरासत और आज की प्रासंगिकता : नेहरू के निधन के छह दशक बाद भी उनकी छाप कायम है। आज हम 'गुटनिरपेक्षता' की जगह 'रणनीतिक स्वायत्तता' (Strategic Autonomy) कहते हैं, पर भाव वही है—भारत किसी शक्ति के अधीन नहीं होगा।

भारत की भूमिका G-20, BRICS, और संयुक्त राष्ट्र में नेहरू की बहुपक्षीयता (Multilateralism) की भावना को ही आगे बढ़ाती है। 2023 का ग्लोबल साउथ समिट उसी बांडुंग भावना की आधुनिक अभिव्यक्ति थी।

आर्थिक आत्मनिर्भरता का सिद्धांत आज 'आत्मनिर्भर भारत' के रूप में पुनर्जीवित हुआ है। यद्यपि तरीके बदल गए हैं, पर मूल विचार—कि राजनीतिक स्वतंत्रता आर्थिक शक्ति पर निर्भर है—पूरी तरह नेहरूवियन है।

क्षेत्रीय मामलों में उनका 'अहस्तक्षेप' का सिद्धांत आज भी म्यांमार, श्रीलंका जैसे पड़ोसी देशों के प्रति भारत की नीति में झलकता है।

भारतीय सॉफ्ट पावर—योग, सिनेमा, डिजिटल नवाचार—सब उसी सांस्कृतिक कूटनीति की निरंतरता हैं जिसे नेहरू ने ICCR और NESCO जैसे संस्थानों के माध्यम से प्रारंभ किया था।

सबसे बढ़कर, नेहरू का विश्वास यह था कि राजनय केवल शक्ति का नहीं, नैतिकता का भी माध्यम है। आज जब हम जलवायु न्याय, परमाणु निरस्त्रीकरण या डिजिटल शासन की बात करते हैं, तो वही नैतिक भाषा दोहराई जाती है जो नेहरू ने 1950 के दशक में दी थी।

निष्कर्ष : नेहरू की अमर भावना 1950 के दशक से लेकर आज तक विश्व व्यवस्था कई बार बदली है। शीतयुद्ध समाप्त हुआ, शक्ति का केंद्र एशिया की ओर खिसका, और नई चुनौतियाँ—जैसे जलवायु परिवर्तन, साइबर युद्ध और कृत्रिम बुद्धिमत्ता—उभर आईं।

फिर भी नेहरू की भावना जीवित है—यह विश्वास कि भारत को स्वतंत्र सोचना चाहिए, नैतिकता के साथ कार्य करना चाहिए और शांति का पक्षधर रहना चाहिए। आज भी जब भारत विश्व मंच पर बोलता है, तो उसकी आवाज़ में वही नेहरूवियन आत्मा झलकती है-'शक्ति के साथ नहीं, नैतिकता के साथ नेतृत्व।'

नेहरू के नेतृत्व में भारत हर प्रमुख अंतरराष्ट्रीय मंच पर सक्रिय हुआ। संयुक्त राष्ट्र में भारत ने उपनिवेशवाद के अंत, नस्लीय समानता और परमाणु निरस्त्रीकरण के पक्ष में जोरदार आवाज उठाई। कोरिया से लेकर कांगो तक, भारतीय सेनाएँ शांति स्थापना मिशनों में शामिल रहीं।

भारत कॉमनवेल्थ ऑफ नेशंस में भी सदस्य बना रहा, लेकिन समानता के आधार पर—यह नेहरू की व्यवहारिकता का उदाहरण था। उन्होंने पश्चिम के साथ सांस्कृतिक और आर्थिक संबंध बनाए रखे, पर राजनीतिक स्वतंत्रता पर कोई समझौता नहीं किया।

नेहरू की नीतियाँ आलोचना से परे नहीं थीं। 1962 का चीन युद्ध उनके लिए सबसे बड़ा आघात था। चीन की सद्भावना पर उनका भरोसा और सैन्य तैयारी की कमी ने देश को गहरे संकट में डाल दिया। कश्मीर मुद्दे को संयुक्त राष्ट्र में ले जाने का उनका निर्णय भी विवादास्पद रहा।

पाकिस्तान के पश्चिमी गुटों से जुड़ जाने से क्षेत्रीय असंतुलन पैदा हुआ। कुछ रणनीतिक चिंतकों—जैसे के. सुब्रह्मण्यम—का मत था कि नेहरू का 'नैतिकतावाद' भारत की सामरिक यथार्थवादिता को कमजोर करता है। वहीं इतिहासकार विपिन चंद्र जैसे विद्वान मानते हैं कि नेहरू की संयमित नीति ने भारत को नैतिक वैधता दी और उसे शीतयुद्ध की खतरनाक राजनीति से दूर रखा।

नेहरू फोबिया का मूल कारण क्या है

मीडिया मैप न्यूज़ नेटवर्क

संघ परिवार द्वारा प्रस्तुत ऊंची जाति की हिंदू राजनीति और उनके द्वारा जवाहरलाल नेहरू के प्रति बरती जा रही स्थायी शत्रुता भारतीय राजनीति का एक विचित्र विरोधाभास है। नेहरू एक कश्मीरी ब्राह्मण थे-एक ऐसा समुदाय जो स्वयं को वैदिक आर्यों की सबसे शुद्ध वंशावली मानता है-और वे एक कुलीन वर्ग से थे, जिस वर्ग की आज आरएसएस-भाजपा रक्षा करने का दावा करती है। फिर भी, नेहरू ही उनके राजनीतिक आख्यानों में सबसे ज्यादा निशाने पर हैं।

पहली पीढ़ियों द्वारा 'पंडितजी' के रूप में श्रद्धा से पुकारे जाने वाले नेहरू प्रगतिशील विचारों और समाजवादी सोच वाले व्यक्ति थे। वे सामाजिक सुधारक तो नहीं थे, लेकिन जातिवादी भी नहीं थे। उन्होंने पारंपरिक सामाजिक ढांचे को तोड़ने की कोशिश नहीं की, पर उसे खुले रूप से समर्थन भी नहीं दिया। विडंबना यह है कि भाजपा के वरिष्ठ नेता और पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी, नेहरू के बड़े प्रशंसक थे और उन्होंने उनकी मृत्यु पर एक अत्यंत भावुक श्रद्धांजलि दी थी।

ऐसे इतिहास को देखते हुए आज भाजपा-आरएसएस नेताओं द्वारा नेहरू के खिलाफ चलाया जा रहा नफरत का अभियान समझ से परे है। खासकर तब जब नेहरू दशकों से राजनीतिक रूप से अप्रासंगिक हो चुके हैं और भी अजीब बात यह है कि उनके आज के सबसे मुखर आलोचक तो उनके निधन (1964) के काफी बाद पैदा हुए हैं और स्वतंत्रता संग्राम व राष्ट्र निर्माण में उनके योगदान को शायद ही समझते हैं।

नेहरू के कार्यकाल की आलोचना पहले भी हुई थी, विशेषकर 1962 के चीन युद्ध के बाद, जिसने उनकी छवि को काफी नुकसान पहुंचाया। लेकिन तब भी उनके सबसे तीव्र आलोचक उनके देशभक्त होने या उनके दृष्टिकोण पर सवाल नहीं उठाते थे। आज के हमले अलग हैं- व्यक्तिगत, विषैले और अक्सर ऐतिहासिक समझ से रहित।

नेहरू के विकास मॉडल को अक्सर औद्योगीकरण पर अधिक जोर देने के लिए दोषी ठहराया गया। लेकिन आत्मनिर्भर भारत की उनकी कल्पना ने वह बुनियादी ढांचा खड़ा किया जिससे हम आज लाभ उठा रहे हैं। बांध, वैज्ञानिक संस्थान और सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयां-ये सब भारत को आधुनिक बनाने की दीर्घकालिक योजना का हिस्सा थीं। उस समय के आलोचक, जैसे लोहिया स्कूल के समाजवादी, उन्हें अभिजात्यवादी मानते थे- 'भारत' के बजाय 'इंडिया' का प्रतिनिधि। लेकिन उस समय की आलोचना, आज की तरह व्यक्तिगत या ऐतिहासिक विकृति पर आधारित नहीं थी।

तो फिर आज इतना क्रोध क्यों? नेहरू

'पंडितजी' के रूप में श्रद्धा से पुकारे जाने वाले नेहरू प्रगतिशील विचारों और समाजवादी सोच वाले व्यक्ति थे। वे सामाजिक सुधारक तो नहीं थे, लेकिन जातिवादी भी नहीं थे। उन्होंने पारंपरिक सामाजिक ढांचे को तोड़ने की कोशिश नहीं की, पर उसे खुले रूप से समर्थन भी नहीं दिया। विडंबना यह है कि भाजपा के वरिष्ठ नेता और पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी, नेहरू के बड़े प्रशंसक थे और उन्होंने उनकी मृत्यु पर एक अत्यंत भावुक श्रद्धांजलि दी थी। ऐसे इतिहास को देखते हुए आज भाजपा-आरएसएस नेताओं द्वारा नेहरू के खिलाफ चलाया जा रहा नफरत का अभियान समझ से परे है—खासकर तब जब नेहरू दशकों से राजनीतिक रूप से अप्रासंगिक हो चुके हैं। और भी अजीब बात यह है कि उनके आज के सबसे मुखर आलोचक तो उनके निधन (1964) के काफी बाद पैदा हुए हैं और स्वतंत्रता संग्राम व राष्ट्र निर्माण में उनके योगदान को शायद ही समझते हैं। नेहरू के कार्यकाल की आलोचना पहले भी हुई थी, विशेषकर 1962 के चीन युद्ध के बाद, जिसने उनकी छवि को काफी नुकसान पहुंचाया। लेकिन तब भी उनके सबसे तीव्र आलोचक उनके देशभक्त होने या उनके दृष्टिकोण पर सवाल नहीं उठाते थे। आज के हमले अलग हैं—व्यक्तिगत, विषैले, और अक्सर ऐतिहासिक समझ से रहित।

आज इतना तीव्र भावनात्मक प्रतिरोध क्यों पैदा करते हैं? गहराई से देखने पर पता चलता है कि आज नेहरू की आलोचना उस समाज के एक वर्ग को अपील करती है जो उदारीकरण के बाद उभरा है- खुदरा, रियल एस्टेट, बैंकिंग, बीपीओ और छोटे व्यवसायों में काम करने वाले पेशेवर, जो दबावपूर्ण और लाभ-केंद्रित माहौल में काम करते हैं। उनका इतिहास ज्ञान अक्सर सतही होता है, लेकिन वे आत्मविश्वास से आलोचना करते हैं। उनके लिए सफलता का पैमाना भौतिक संपन्नता है, और उनके दृष्टिकोण में नेहरू का संस्थागत अनुशासन, नियमन और सामाजिक न्याय पर बल अप्रासंगिक लगता है।

इन भावनाओं को अकादमिक जगत, मीडिया और आकांक्षी मध्य वर्ग के छद्म-बौद्धिक लोग और भी हवा देते हैं। उनके लिए वर्तमान शासन या असमानता की जटिलताओं से जूझना कठिन है, इसलिए किसी ऐतिहासिक व्यक्ति पर हमला करना आसान विकल्प बन जाता है। संघ परिवार की विचारधारा से जुड़े अन्य लोग इस विरोध में सांप्रदायिक नजरिया भी लाते हैं, जिससे नेहरू एक सुविधाजनक वैचारिक बलि का बकरा बन जाते हैं।

नेहरू का दर्शन उस भारत के मूल्यों के विपरीत खड़ा होता है, जो आज बाजार-प्रधान बन चुका है। वे मानते थे कि राज्य को व्यापार पर नियंत्रण रखना चाहिए, कमजोरों की रक्षा करनी चाहिए और लोकतांत्रिक संस्थाओं की रक्षा करनी चाहिए। उनके अनुसार, आर्थिक प्रगति संस्थागत ईमानदारी या सामाजिक जिम्मेदारी की कीमत पर नहीं होनी चाहिए। जबकि उनके आलोचक बेलगाम पूंजीवाद की प्रशंसा करते हैं और गरीबों या हाशिये के लोगों पर इसके प्रभाव को नजरअंदाज कर देते हैं।

इसीलिए नेहरू उनके लिए आंख की किरकिरी बने हुए हैं। वे एक नैतिक प्रतिबंध का प्रतीक हैं-यह याद दिलाते हैं कि राष्ट्र निर्माण सिर्फ जीडीपी या शेयर बाजार के आंकड़ों से नहीं होता। उनका उत्तराधिकार उन लोगों के लिए असहज है जो एक ऐसे तंत्र में फलते-फूलते हैं जहां शॉर्टकट, पूंजीपति-साठगांठ और मुनाफाखोरी सामान्य हो चुकी है। इसके अतिरिक्त, नेहरू आधुनिक, आदर्शवादी भारतीयों के प्रतीक

नेहरू का दर्शन उस भारत के मूल्यों के विपरीत खड़ा होता है, जो आज बाजार-प्रधान बन चुका है। वे मानते थे कि राज्य को व्यापार पर नियंत्रण रखना चाहिए, कमजोरों की रक्षा करनी चाहिए और लोकतांत्रिक संस्थाओं की रक्षा करनी चाहिए। उनके अनुसार, आर्थिक प्रगति संस्थागत ईमानदारी या सामाजिक जिम्मेदारी की कीमत पर नहीं होनी चाहिए। जबकि उनके आलोचक बेलगाम पूंजीवाद की प्रशंसा करते हैं और गरीबों या हाशिये के लोगों पर इसके प्रभाव को नजरअंदाज कर देते हैं। इसीलिए नेहरू उनके लिए आंख की किरकिरी बने हुए हैं। वे एक नैतिक प्रतिबंध का प्रतीक हैं-यह याद दिलाते हैं कि राष्ट्र निर्माण सिर्फ जीडीपी या शेयर बाजार के आंकड़ों से नहीं होता। उनका उत्तराधिकार उन लोगों के लिए असहज है जो एक ऐसे तंत्र में फलते-फूलते हैं जहां शॉर्टकट, पूंजीपति-साठगांठ और मुनाफाखोरी सामान्य हो चुकी है।

थे—नौकरशाहों, न्यायाधीशों, शिक्षकों, पत्रकारों और सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिए जो ईमानदारी, समानता और तर्कसंगत शासन के मूल्यों में विश्वास रखते थे। इन लोगों को आज कॉरपोरेट और राजनीतिक शक्तियों ने हाशिये पर धकेल दिया है, लेकिन फिर भी वे भारत के संसाधनों और लोगों के अंधाधुंध शोषण के खिलाफ संघर्ष कर रहे हैं। नेहरू को बदनाम करना इस प्रतिरोध को कमजोर करना है—लालच और निरंकुश सत्ता पर लगी आखिरी नैतिक रोक को हटाना।

विडंबना यह है कि वही वर्ग जिसने नेहरू द्वारा बनाए गए बुनियादी ढांचे से सबसे ज्यादा लाभ उठाया है, अब उन्हें ही अवमानित करने पर तुला है। वे सड़कें, उद्योग और संस्थान जिनसे आज वे मुनाफा कमा रहे हैं, उसी व्यक्ति की देन हैं जिसे वे दोषी ठहराते हैं। लेकिन उपभोक्तावादी मानसिकता और ऐतिहासिक समझ की कमी के चलते वे नेहरू को भारत की हर समस्या—ब्यूरोक्रेसी से लेकर गरीबी तक—का दोषी ठहराते हैं, बिना यह समझे कि आज़ादी के बाद देश ने कितनी चुनौतियां झेली थीं।

असल में, यह नेहरू-विरोधी अभियान इतिहास के प्रति जवाबदेही नहीं, बल्कि एक ऐसी विरासत को मिटाने का प्रयास है जो बाजार के निरंकुश वर्चस्व के रास्ते में खड़ी है। नेहरू के खिलाफ लगाए गए आरोप ज्यादातर निराधार हैं और असल एजेंडे से ध्यान भटकाने के लिए गढ़े गए हैं—आर्थिक और राजनीतिक शक्ति को केंद्रीकृत करने के लिए, उन संस्थाओं और मूल्यों को कमजोर करके जिनकी उन्होंने नींव रखी थी। आखिर में, नेहरू उस भारत की कल्पना करते थे जो समावेशी, दूरदर्शी और लोकतांत्रिक आदर्शों में विश्वास रखता हो। उनके युग या योगदान को समझे बिना की गई आलोचना हमारे लोकतंत्र को मजबूत नहीं करती—बल्कि उसे कमजोर कर देती है। यदि हम अपने अतीत के सबक भूल जाते हैं, तो हमें वही गलतियां दोहरानी पड़ेंगी।

दीपावली के दियों के संग जलती रिश्वत की लौ

दीपावली चमक-धमक का त्योहार है- सोना, नए कपड़े, पटाखे, हंसी-ठिठोली और अरबों का खर्च- घरों से लेकर बाजारों तक। घर रोशनी से जगमगा उठते हैं, रंगोली के रंग बिखरते हैं, मिठाइयों का आदान-प्रदान होता है, दीये कतारों में टिमटिमाते हैं। धन की देवी महालक्ष्मी हर घर में पूजी जाती हैं, और व्यापार अपनी चरम गति पर होता है।

परंतु कहीं दफ्तरों के भीतर चुपचाप एक लिफाफा हाथ बदलता है। बाहर लालटेनें जलती हैं-पर साथ ही कुछ जेबें भी रोशन हो जाती हैं।

भारत के दीपावली गिफ्ट बाजार का वास्तविक आकार कोई नहीं जानता। कन्फेडरेशन ऑफ ऑल इंडिया ट्रेडर्स (CAIT) का अनुमान है कि 2025 में यह 6.05 लाख करोड़ (80 अरब डॉलर) तक पहुंच गया- त्योहारों में खर्च का 'रिकॉर्ड' स्तर। अन्य व्यापारिक संगठन जैसे FICCI, CII या ASSOCHAM ने अनुमान लगाने से परहेज़ किया है, क्योंकि बेरोजगारी, घटती आय और अस्थिर दामों के बीच इतनी बड़ी वृद्धि संभव नहीं लगती।

मिठाइयों और मेवों से लेकर विदेशी चॉकलेट्स और सोने के सिक्कों तक, गिफ्टिंग अब एक बहु-अरब रुपये का कारोबार बन चुकी है। महंगे सोने की खरीद घट रही है-पर 'अमूल गोल्ड', 'प्रिया गोल्ड', 'टाटा गोल्ड' और 'ब्रिट मैरी गोल्ड' खूब बिक रहे हैं।

पारंपरिक मिठाई के डिब्बे अब वाइन, मोमबत्तियों, पर्यावरण-हितैषी सजावटों, हस्तनिर्मित वस्तुओं-हाथ से बुने वस्त्रों, सिरेमिक, बांस के कपों, हस्तशिल्प चॉकलेट्स के सजे हेम्पर्स के साथ जगह साझा करते हैं-यहां तक कि ग्रामीण भारत तक पहुंच चुके हैं।

यह है दीवाली का उजला चेहरा। लेकिन

प्रो. शिवाजी सरकार

इस रोशनी के पीछे एक काली परंपरा भी चलती है- 'त्योहारी गिफ्ट' का आदान-प्रदान, जो उम्मीदों के साथ आता है। फाइलें साइन करवानी हैं, टेंडर पास करवाने हैं, सड़कें दोबारा बिछानी हैं-कहीं न कहीं किसी को 'गियर' चलाना पड़ता है।

इसलिए आश्चर्य नहीं कि भारत की नकद अर्थव्यवस्था फल-फूल रही है। 2016 की नोटबंदी के दौरान मुद्रा प्रवाह 15 लाख करोड़ था; अब यह 32 लाख करोड़ पार कर चुका है। यह नया सामान्य है-जिसे लोग चुपचाप 'सुविधा शुल्क' कहते हैं-even वैध काम करवाने के लिए।

सौ गुना बढ़ोतरी : त्योहारी गिफ्ट अब 'अपेक्षा के बिल' के साथ आते हैं।

- मिठाई, चाय-पानी, सुविधा-भ्रष्टाचार के मीठे नाम।' एक शीर्ष बहुराष्ट्रीय प्रबंधन अधिकारी, 'शिखा त्यागी', कहती हैं, 'व्यवसायों ने दीवाली पर भ्रष्टों को उपहार देने का कानूनी तरीका खोज लिया है। दरें दस साल में सौ गुना बढ़ गई हैं।'

जो लोग ठीकठाक वेतन पाते हैं, वे भी पेंशन, स्कूल अनुमोदन या ट्रेड लाइसेंस जैसे कामों में रुकावट डालकर हिस्सा मांगते हैं। बड़ी कंपनियों से लेकर छोटे दुकानदार तक अब 'फेस्टिव फैसिलिटेशन एक्सपेंस' (त्योहारी सुविधा खर्च) का बजट बनाते हैं- कानूनी भाषा में लिपटा हुआ रिश्वत खर्च।

- यह विडंबना देवी महालक्ष्मी के नाम पर भी कम नहीं-धन की देवी उस मौसम की साक्षी हैं जब अवैध धन सबसे अधिक बहता है।
- यह समस्या सीमाओं के पार भी है। भारत के एक अरबपति उद्योगपति पर अमेरिका में .265 मिलियन (2200 करोड़) की रिश्वत और प्रतिभूति धोखाधड़ी का आरोप है- सोलर कॉन्ट्रैक्ट्स से जुड़ा हुआ।

सीमाओं से परे : सालों में अमेरिका ने भारत में रिश्वतखोरी के मामलों पर कई कंपनियों पर जुर्माना लगाया है। कॉग्निज़ेंट को चेन्नई में एक अधिकारी को 'सुविधा राशि' देने के मामले में US Foreign Corrupt Practices Act (FCPA) के तहत .25 मिलियन चुकाने पड़े। इसी कानून के तहत Embraer, Anheuser-Busch, Mondelez/Cadbury, Oracle, Tyco, Dow Chemical, Te&tron, Diageo जैसी कंपनियां भारत में कुल .77.8 मिलियन की रिश्वत के मामलों में दोषी ठहराई गईं, Foley & Lardner नामक लॉ फर्म की रिपोर्ट के अनुसार।

छत्तीसगढ़ में एक विधवा को अपनी पेंशन और ग्रेच्युटी पास करवाने के लिए 2.8 लाख की रिश्वत मांगी गई। उसने संघर्ष किया। हाई कोर्ट ने एफआईआर रद्द करने से इनकार करते हुए कहा कि यह 'नैतिक अध:पतन' (Moral Turpitude) का मामला है।

हाल के मामलों से स्पष्ट है कि भ्रष्टाचार ऊपर से नीचे तक फैला है। गुवाहाटी में NHIDCL के प्रबंध निदेशक कृष्ण कुमार को प्रोजेक्ट क्लियरेंस के लिए 10 लाख की रिश्वत लेते पकड़ा गया। पंजाब में DIG एच. एस. भुल्लर की गिरफ्तारी में नकदी, सोना और लग्ज़री घड़ियों का अंबार मिला। एक मामूली PWD सुपरवाइज़र भी कॉन्ट्रैक्टरों से 7,000-30,000 तक मांगता है-ये छोटी-छोटी रकमें मिलकर सिस्टम की जड़ों में सड़न दिखाती हैं।

भ्रष्टाचार हर विभाग में रिस चुका है- पेंशन, निर्माण, कर विभाग, यहां तक कि विश्वविद्यालयों के NAAC ग्रेड तक। एक विदेशी सड़क ठेकेदार ने भुगतान न मिलने पर आत्महत्या कर ली-एक प्रतीकात्मक मामला।

अब ज़रा मौसम की तस्वीर सोचिए। सड़कें चमक रही हैं, फ्लाईओवर दमक रहे हैं। कॉन्ट्रैक्टर 'दीवाली टोकन' लेकर कतार में हैं। रस्मों के नीचे कृतज्ञता से कृपा प्राप्ति का समानांतर अर्थशास्त्र छिपा है।

एनसीआर-यूपी निवासी वरिष्ठ पत्रकार 'सतीश मिश्रा' कहते हैं : 'बिना रिश्वत के काम नहीं चलता। मुझे भी अपनी पत्नी के फ्लैट की रजिस्ट्री के समय देना पड़ा। बिल्डर एनओसी दिए बिना भाग गया था। सोसाइटी ने सामूहिक भुगतान किया-सबको पता था पैसा कहां जा रहा है।' और पैमाना? 2024 की Local Circles सर्वे रिपोर्ट बताती है कि 66% भारतीय व्यवसायों ने पिछले साल रिश्वत दी- ज्यादातर सरकारी अधिकारियों को (72%)। कुछ को मजबूरन देना पड़ा, कुछ ने काम जल्दी करवाने के लिए। 83% रिश्वत नकद थी, बाकी 'गिफ्ट' या एजेंटों के ज़रिए 'फेवर' के रूप में दी गई। इस साल कई भुगतानों में दीवाली से पहले 'प्रतिशत तय न होने' पर रोक लगाई गई। बंद कमरों में अब 'सॉफ्टवेयर सिस्टम' और 'सॉफ्ट हैंड्स' का संगम है-कई गुप्त बैंक खातों से यह काम आसान हुआ है।

दीपावली 2025 से पहले, केंद्र सरकार ने सभी विभागों को सरकारी धन से त्योहारों पर गिफ्ट देने पर प्रतिबंध लगाया। कई राज्यों ने भी अनुसरण किया। राजस्थान ACB ने चेतावनी दी कि महंगे गिफ्ट देने या लेने पर मुकदमा हो सकता है। गुजरात ACB ने दीवाली गिफ्ट पर गुप्त निगरानी की घोषणा की। तमिलनाडु में विजिलेंस निदेशालय ने 'गिफ्ट' पर नजर रखने के लिए विशेष दल बनाए-अक्सर मिठाई के डिब्बों में नकद भरे रहते हैं।

डिजिटल घूसखोरी : फिर भी दीपावली की रिश्वत कथा नहीं बदलती। अब 'गिफ्ट' के बहाने- नकदी से भरा लिफाफा या संदिग्ध खातों के जरिये भुगतान-सब सुचारू रूप से चलता है।

कुछ कहते हैं, 'गिफ्ट तो संस्कृति है।' सही है- पर संस्कृति लेन-देन की शर्तों पर नहीं टिकती। जब मिठाई का डिब्बा यह मौन संदेश लेकर आता है- 'फाइल मंजूर करते समय हमें याद रखना' तो वह उदारता नहीं, सौदा बन जाता है।

वित्तीय पत्रिका Money life ने इसे सटीक परिभाषित किया है : 'रिश्वत वह है जिसमें अवैध, अनैतिक या भरोसे के उल्लंघन वाले कार्य के लिए किसी लाभ का प्रस्ताव, वादा, भुगतान या स्वीकृति दी जाए।'

कोई भी राशि 'गिफ्ट बास्केट' में रखी जा सकती है। यह फिल्मी भ्रष्टाचार नहीं, बल्कि रोज़मर्रा का- सामान्यीकृत, स्वीकृत, सहज हो चुका भ्रष्टाचार है।

विडंबना यह है कि हम अपने दरवाजे दीयों से सजाते हैं और दिल उदारता से भरते हैं-पर वहीं 'सद्भावना का प्रतीक' बन जाता है : 'ये रहा आपका गिफ्ट, पूजा के बाद काम कर देना।'

किसी ने मज़ाक में कहा कि दीवाली अब 'घूसखोरी का धार्मिक उत्सव' बन चुकी है। शायद यह मज़ाक नहीं था। क्योंकि हर 'गिफ्ट' दरअसल एक 'शर्तों वाला उपहार' है। और रोशनी का यह पर्व-दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र में-फिर से 'मौन धन' का मौसम बनने के खतरे में है।

(प्रो. शिवाजी सरकार वरिष्ठ पत्रकार और मीडिया कार्यकर्ता हैं, जो वित्तीय रिपोर्टिंग में विशेषज्ञता रखते हैं)

♦♦

एनसीआर-यूपी निवासी वरिष्ठ पत्रकार 'सतीश मिश्रा' कहते हैं : 'बिना रिश्वत के काम नहीं चलता। मुझे भी अपनी पत्नी के फ्लैट की रजिस्ट्री के समय देना पड़ा। बिल्डर एनओसी दिए बिना भाग गया था। सोसाइटी ने सामूहिक भुगतान किया-सबको पता था पैसा कहां जा रहा है।' और पैमाना? 2024 की Local Circles सर्वे रिपोर्ट बताती है कि 66% भारतीय व्यवसायों ने पिछले साल रिश्वत दी- ज्यादातर सरकारी अधिकारियों को (72%)। कुछ को मजबूरन देना पड़ा, कुछ ने काम जल्दी करवाने के लिए। 83% रिश्वत नकद थी, बाकी 'गिफ्ट' या एजेंटों के ज़रिए 'फेवर' के रूप में दी गई। इस साल कई भुगतानों में दीवाली से पहले 'प्रतिशत तय न होने' पर रोक लगाई गई। बंद कमरों में अब 'सॉफ्टवेयर सिस्टम' और 'सॉफ्ट हैंड्स' का संगम है-कई गुप्त बैंक खातों से यह काम आसान हुआ है। दीपावली 2025 से पहले, केंद्र सरकार ने सभी विभागों को सरकारी धन से त्योहारों पर गिफ्ट देने पर प्रतिबंध लगाया। कई राज्यों ने भी अनुसरण किया। राजस्थान ACB ने चेतावनी दी कि महंगे गिफ्ट देने या लेने पर मुकदमा हो सकता है। गुजरात ACB ने दीवाली गिफ्ट पर गुप्त निगरानी की घोषणा की। तमिलनाडु में विजिलेंस निदेशालय ने 'गिफ्ट' पर नजर रखने के लिए विशेष दल बनाए-अक्सर मिठाई के डिब्बों में नकद भरे रहते हैं।

♦♦

जन्म दिवस : नवम्बर 19

इंदिरा गांधी, निहित स्वार्थों का षड्यंत्र और आपातकाल

प्रो. प्रदीप माथुर

भारत के राजनीतिक इतिहास में इंदिरा गांधी का नाम एक ऐसे नेता के रूप में दर्ज है जिन्होंने देश को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया, पर साथ ही कुछ गंभीर निर्णयों के कारण वे विवादों के घेरे में भी आ गईं। संभवत: वे विश्व की सर्वकालिक सबसे प्रभावशाली और सशक्त महिला नेताओं में से एक थीं, किंतु 1975 में लगाया गया आपातकाल और 1984 में स्वर्ण मंदिर पर की गई सैनिक कार्रवाई ने उनकी छवि पर गहरे धब्बे छोड़ दिए।

मैं यह दावा तो नहीं कर सकता कि मैंने इंदिरा गांधी को बहुत निकट से जाना था, लेकिन इतना अवश्य कह सकता हूँ कि उन्हें देखा, समझा और एक पत्रकार के रूप में उनके राजनीतिक सफर का साक्षी रहा। 1967 में जब मैंने पत्रकारिता शुरू की, उसी वर्ष उन्होंने देश की बागडोर संभाली थी। उस दौर में मेरे जैसे वामपंथी पृष्ठभूमि से आए युवा पत्रकारों, बुद्धिजीवियों और कार्यकर्ताओं को उनसे बड़ी उम्मीदें थीं। हमें विश्वास था कि श्रीमती इंदिरा गांधी देश में समाजवादी क्रांति की दिशा में ठोस कदम उठाएंगी।

सन् 1968 में जब मैंने 'द पायनियर अखबार' से अपने करियर की शुरुआत की, तब इंदिरा गांधी कानपुर आई थीं। वे वहाँ आईआईटी कानपुर के पहले दीक्षांत समारोह की अध्यक्षता करने पहुंची थीं। उस समय सुरक्षा व्यवस्था इतनी कठोर नहीं थी। मैं अन्य पत्रकारों के साथ प्रधानमंत्री से कुछ ही कदमों की दूरी पर खड़ा होकर उन्हें देख पा रहा था। बाद में संसद कवर करते हुए भी कई बार उन्हें निकट से देखने और उनके व्यक्तित्व को समझने का अवसर मिला।

इंदिरा गांधी का व्यक्तित्व करिश्माई और प्रभावशाली था। उनके नेतृत्व में जनता ने यह उम्मीद की कि भारत आधुनिकता, समाजवाद और लोकतांत्रिक मूल्यों की राह पर तेज़ी से आगे बढ़ेगा। 1971 के भारत-पाक युद्ध में मिली ऐतिहासिक विजय और बांग्लादेश की मुक्ति ने उन्हें लोकप्रियता के चरम पर पहुँचा दिया। परंतु इसी लोकप्रियता के साथ उनके विरोध की राजनीति भी आकार लेने लगी।

निहित स्वार्थों की राजनीति और षड्यंत्र : प्रधानमंत्री बनने के बाद इंदिरा गांधी ने कई क्रांतिकारी कदम उठाए-बैंकों का राष्ट्रीयकरण, प्रिवी पर्स की समाप्ति और गरीबों के पक्ष में कई योजनाएँ। इन निर्णयों से उस वर्ग के आर्थिक हितों पर गहरा आघात हुआ जो लंबे समय से देश की अर्थव्यवस्था और व्यापार पर अपना वर्चस्व बनाए हुए था। स्वाभाविक ही था कि यह वर्ग उनके विरुद्ध सक्रिय हो गया। दूसरी ओर, कांग्रेस के वे पुराने नेता जिन्होंने यह सोच रखा था कि इंदिरा गांधी उनकी कठपुतली बनेंगी, उनकी दृढ़ और स्वतंत्र कार्यशैली से असहज हो उठे। यही कारण था कि कांग्रेस में विभाजन हुआ और इंदिरा गांधी ने 'इंदिरा कांग्रेस' के रूप में अपनी नई पहचान बनाई। इसी पृष्ठभूमि में 1973 में गुजरात में नवनिर्माण आंदोलन और बिहार में जयप्रकाश नारायण का 'संपूर्ण क्रांति' आंदोलन खड़ा हुआ। यह आंदोलन धीरे-धीरे व्यापक होता गया और विपक्षी दलों ने जेपी को अपने नेतृत्व का प्रतीक बना लिया। जेपी स्वयं समाजवादी थे, किंतु आरएसएस और अन्य दक्षिणपंथी ताकतों ने इस आंदोलन में प्रवेश कर लिया। यहीं से भारतीय राजनीति में एक नई वैचारिक धारा उभरी जिसका प्रभाव आज तक देखा जा सकता है।

आपातकाल की पृष्ठभूमि : आम धारणा है कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय के उस फैसले के कारण, जिसमें इंदिरा गांधी का चुनाव अवैध ठहराया गया था, उन्होंने आपातकाल लगाया। पर यह केवल आधा सच है। असली कारण था-निहित स्वार्थों और विपक्षी ताकतों का वह गठजोड़ जो उनके विरुद्ध संगठित होकर लगातार भ्रम फैलाने और अस्थिरता पैदा करने में लगा था। जब जयप्रकाश नारायण ने दिल्ली की एक रैली में यहाँ तक कह दिया कि 'पुलिस और सेना सरकार की आज्ञा न माने', तब इंदिरा गांधी को लगा कि देश की आंतरिक सुरक्षा और लोकतांत्रिक व्यवस्था गंभीर संकट में है। उन्हें यह विश्वास हो गया कि यदि उन्होंने पद छोड़ा, तो देश की स्थिरता और सुरक्षा खतरे में पड़ जाएगी। हालाँकि उनके विरोधी कुछ भी कहें, इंदिरा गांधी का स्वभाव मूलत: लोकतांत्रिक था। आपातकाल लगाना उनके लिए अत्यंत कठिन निर्णय था, जिसे उन्होंने दबाव और परिस्थितियों के प्रभाव में लिया। संजय गांधी और उनके निकट सहयोगी-हरियाणा के मुख्यमंत्री बंसीलाल और राज्यपाल बी.एन. चक्रवर्ती- ने उन्हें संविधान में उपलब्ध आपातकालीन प्रावधान का उपयोग करने की सलाह दी। सिद्धार्थ शंकर रे जैसे कानूनविदों

की राय और संजय गांधी की बेचैनी ने अंतत: उन्हें यह निर्णय लेने के लिए प्रेरित किया।

आपातकाल का परिणाम : लगभग 18 महीने तक चला यह दौर भारतीय लोकतंत्र के इतिहास की सबसे बड़ी विडंबना बन गया। चाहे इंदिरा गांधी का उद्देश्य देश की स्थिरता बनाए रखना रहा हो, जनता ने इसे तानाशाही के रूप में देखा। 1977 के आम चुनाव में कांग्रेस को करारी हार का सामना करना पड़ा। स्वयं इंदिरा गांधी और संजय गांधी भी चुनाव हार गए। जनता पार्टी सत्ता में आई और इंदिरा गांधी की राजनीतिक साख को गहरा आघात पहुँचा।

एक महान लेकिन त्रुटिपूर्ण नेता : यदि हम इंदिरा गांधी के जीवन का निष्पक्ष मूल्यांकन करें तो पाएँगे कि वे विश्व की गिनी-चुनी महिला नेताओं में थीं जिन्होंने सत्ता के शिखर पर पहुँचकर अंतरराष्ट्रीय राजनीति को प्रभावित किया। उनकी उपलब्धियाँ-1971 की विजय, गरीब समर्थक नीतियाँ और अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भारत की सशक्त पहचान-उन्हें एक महान नेता के रूप में स्थापित करती हैं। परंतु 1975 का आपातकाल और 1984 में स्वर्ण मंदिर पर की गई कार्रवाई उनके जीवन की सबसे बड़ी भूलें साबित हुईं।

निष्कर्ष : आपातकाल का असली कारण न तो केवल अदालत का निर्णय था, न ही सत्ता से चिपके रहने की लालसा। इसकी जड़ें कहीं गहरी थीं-निहित स्वार्थों, विरोधी राजनीतिक ताकतों और उस संगठित षड्यंत्र में जो इंदिरा गांधी को कमजोर करना चाहता था। फिर भी, अंतिम निर्णय उन्हीं का था, और इतिहास इसके लिए उन्हें जिम्मेदार ठहराता है। उनकी जयंती पर हमें यह समझना चाहिए कि किसी भी बड़े नेता के लिए केवल लोकप्रिय होना या जनप्रिय निर्णय लेना पर्याप्त नहीं होता। उसे उन छिपे षड्यंत्रों को भी पहचानना चाहिए जो विरोधी ताकतें चुपचाप उसके विरुद्ध बुनती रहती हैं।

सिख जनमानस से अलगाव और स्वर्ण मंदिर त्रासदी

लंबे संघर्ष के बाद प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री के शासनकाल में केंद्रीय सरकार पंजाबी सूबे के विषय में गंभीर हुई। पर कुछ कारणों से श्रीमती इंदिरा गांधी पंजाबी सूबे के विरुद्ध थीं। केंद्रीय मंत्री के रूप में उन्होंने प्रधानमंत्री शास्त्री के समक्ष अपना विरोध जताया। पर शास्त्री जी ने उनके विरोध के बावजूद अकाली दल की बात मानी और पंजाबी सूबे का गठन हुआ। इस कारण पंजाबी सूबे के गठन के समय से ही सिख नेतृत्व और इंदिरा गांधी के बीच अविश्वास का बीज बोया जा चुका था। पंजाब के कई अखबारों में इंदिरा गांधी की आलोचना आम बात थी। बाद में, जब पंजाब में चरमपंथ बढ़ा, तो इंदिरा गांधी ने अकाली नेतृत्व को कमजोर करने के लिए संत जरनैल सिंह भिंडरावाले को अप्रत्यक्ष समर्थन दिया। यह रणनीति उलटी पड़ी और पंजाब हिंसा की आग में झुलसने लगा। 1984 में स्वर्ण मंदिर पर ऑपरेशन ब्लू स्टार के रूप में सेना की कार्रवाई हुई। यह निर्णय इंदिरा गांधी की व्यक्तिगत इच्छा से अधिक उनके सलाहकारों-विशेषकर अरुण नेहरू-के दबाव का परिणाम था। परिणाम भयानक निकला। सिख समाज में गहरा आक्रोश भड़का और अंतत: उनके ही सिख अंगरक्षकों ने 31 अक्टूबर 1984 को उनकी हत्या कर दी।

विरोधाभास और मानवीय पहलू : दिलचस्प बात यह है कि इंदिरा गांधी को बार-बार चेतावनी दी गई थी कि सिख अंगरक्षकों को हटाना ज़रूरी है, लेकिन उन्होंने कहा- मेरे लिए सब बराबर हैं। यह उनके उदार और मानवीय स्वभाव का परिचायक था। वह सिख विरोधी नहीं थीं, लेकिन राजनीतिक परिस्थितियों ने उन्हें वैसा दिखा दिया।

विरासत को आगे बढ़ाना चाहिए

यह लेख मूल रूप से 1 नवम्बर, 1984 को 'द पायनियर', वाराणसी के अंक में प्रकाशित हुआ था, जब लेखक उसके रेज़िडेंट एडिटर थे : संपादक

प्रो. प्रदीप माथुर

इंदिरा गांधी अब नहीं रहीं। लेकिन भारत आज भी थोड़ा घायल है और बहुत हद तक निराश। मनुष्य संस्थान बनाते हैं, और फिर संस्थान ही उन्हें अमरत्व देते हैं। व्यक्ति नश्वर है, परंतु संस्थान उसके विचारों और कार्यों को स्थायी बना देते हैं।

कई मायनों में श्रीमती गांधी एक संस्थान निर्माता थीं। उन्होंने एक नवजात राष्ट्र और किशोर लोकतंत्र को युवावस्था की परिपक्वता तक पहुँचाया। हर मनुष्य की तरह उनमें भी खूबियाँ और कमजोरियाँ थीं, लेकिन यह निर्विवाद है कि उन्होंने लगभग दो दशकों तक देश को संकट और संघर्ष के बीच स्थिरता के साथ नेतृत्व दिया। एक पारंपरिक, जातिवादी और सामंती समाज से उन्होंने भारत को एक आधुनिक राष्ट्र-राज्य के रूप में उभरने में मदद की।

सच है कि अंधविश्वास और रूढ़िवाद के खिलाफ वह और अधिक निर्णायक संघर्ष कर सकती थीं, परंतु यह कल्पना करना कठिन है कि उनके आधुनिक दृष्टिकोण, वैज्ञानिक सोच और भारत को हर दृष्टि से आधुनिक राष्ट्र बनाने की उनकी दृढ़ इच्छा के बिना हमारा सार्वजनिक जीवन कितना प्रतिक्रियावादी होता। उनके नेतृत्व में भारत ने न केवल एक मज़बूत औद्योगिक आधार और सैन्य क्षमता विकसित की, बल्कि वह विश्व के प्रगतिशील और मानवीय मूल्यों की एक निर्भीक समर्थक भी बनी। चाहे घर हो या विदेश, उन्होंने हर जगह गरीबों, वंचितों और पीड़ितों के पक्ष में तथा अन्याय के विरुद्ध अपनी आवाज़ बुलंद की- चाहे ऐसा करना तत्कालीन सत्ता-नीति या पद की मर्यादा के विरुद्ध ही क्यों न हो।

अब इन सब बातों को याद करने की ज़रूरत क्यों है? क्योंकि आज हम एक धुंधलके के दौर में हैं। उनकी हत्या के बाद जो असहायता, पीड़ा और भ्रम फैला है, वह हमें फिर से उसी अंधेरे युग की ओर ले जा सकता है जिससे हम आज़ादी के बाद बड़ी

कठिनाई से निकले थे।

हत्या की गोलियों ने सिर्फ श्रीमती गांधी के नाजुक शरीर को ही नहीं भेदा, बल्कि उन मूल्यों को भी घायल किया जिनका वह प्रतीक थीं। व्यक्ति और प्रधानमंत्री के रूप में इंदिरा गांधी का महत्व निर्विवाद है, परंतु उससे भी बड़ा महत्व उन मूल्यों का है जिन्हें उन्होंने अपने जीवन से प्रतिष्ठित किया। यदि भारत को इक्कीसवीं सदी में आत्मविश्वास के साथ प्रवेश करना है, तो उसे इन मूल्यों को आत्मसात करना होगा।

आशा की जानी चाहिए कि उनके हत्यारे इन आदर्शों की हत्या में सफल नहीं हुए हैं, भले ही आज देश के कई हिस्सों में पागलपन भरे साम्प्रदायिक दंगे उनके विचारों पर अस्थायी धूल जमा रहे हों।

घायल शरीर से अधिक खतरनाक घायल मन होते हैं। उन्हें भरने में लंबा समय लगता है। और इन मानसिक घावों को भरने के लिए हमें वही आधुनिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना होगा जिसका प्रतीक स्वयं श्रीमती गांधी थीं। उनकी मृत्यु के बाद भी हमें उनकी ही आवश्यकता है- ताकि उनके खो जाने से जो विभाजन और दहन फैला है, उसे समाप्त किया जा सके।

दंगे कुछ दिनों में शांत हो जाएंगे, पर उनके छोड़े घाव लंबे समय तक चाटते रहेंगे। नए प्रधानमंत्री का यह संकल्प स्वागत योग्य है कि हिंसा को लोहे की दृढ़ता से कुचल दिया जाएगा। लेकिन यह पर्याप्त नहीं है।

हमें यह समझना होगा कि हम कभी-कभी दुर्बलता और पागलपन के क्षणों में फिर उसी अंधे गड्ढे में गिर जाते हैं जिससे हम होश और आशा के क्षणों में बड़ी मेहनत से निकलने की कोशिश करते हैं। साम्प्रदायिक हिंसा से समाज के मन में जो गहरी खाई बनी है, वह अत्यंत खतरनाक है। पुलिस और प्रशासन के सहयोग से हुई आगज़नी और लूटपाट की खबरें निराशाजनक हैं।

यह स्वतंत्र भारत के लिए सबसे भयावह स्थिति है- विभाजन की उस त्रासदी के बाद, जिसने एक ऐसे समृद्ध और विविध सांस्कृतिक देश को खंडित कर दिया था, जो एक संघीय स्वरूप में एकजुट रह सकता था।

इसीलिए यह विरासत- विचार, दृष्टि और मानवीयता की-हमें हर हाल में आगे बढ़ानी होगी। यही श्रीमती गांधी की सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

सच है कि अंधविश्वास और रूढ़िवाद के खिलाफ वह और अधिक निर्णायक संघर्ष कर सकती थीं, परंतु यह कल्पना करना कठिन है कि उनके आधुनिक दृष्टिकोण, वैज्ञानिक सोच और भारत को हर दृष्टि से आधुनिक राष्ट्र बनाने की उनकी दृढ़ इच्छा के बिना हमारा सार्वजनिक जीवन कितना प्रतिक्रियावादी होता। उनके नेतृत्व में भारत ने न केवल एक मज़बूत औद्योगिक आधार और सैन्य क्षमता विकसित की, बल्कि वह विश्व के प्रगतिशील और मानवीय मूल्यों की एक निर्भीक समर्थक भी बनी। चाहे घर हो या विदेश, उन्होंने हर जगह गरीबों, वंचितों और पीड़ितों के पक्ष में तथा अन्याय के विरुद्ध अपनी आवाज़ बुलंद की- चाहे ऐसा करना तत्कालीन सत्ता-नीति या पद की मर्यादा के विरुद्ध ही क्यों न हो। अब इन सब बातों को याद करने की ज़रूरत क्यों है? क्योंकि आज हम एक धुंधलके के दौर में हैं। उनकी हत्या के बाद जो असहायता, पीड़ा और भ्रम फैला है, वह हमें फिर से उसी अंधेरे युग की ओर ले जा सकता है जिससे हम आज़ादी के बाद बड़ी कठिनाई से निकले थे।

जेएनयू का वह काला दिन : जब गम और साहस साथ-साथ खड़े थे

जगदीश्वर चतुर्वेदी

सदमे में डूबा कैंपस : 31 अक्टूबर 1984- यह तारीख भारतीय लोकतंत्र के इतिहास का एक गहरा घाव है। प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या की खबर जैसे ही आई, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (जेएनयू) का पूरा परिसर सदमे में डूब गया। चेहरों पर गम, भय और बेचैनी थी। हर कोई पूछ रहा था— कौन था हत्यारा? क्यों किया गया यह अपराध?

मैंने कुछ ही दिन पहले छात्रसंघ अध्यक्ष का पद संभाला था। चुनाव में मुझसे निर्मला सीतारमन के पति प्रभाकर परकाला और प्रो. सुबोध मालाकार हारे थे। छात्रसंघ का दफ्तर अभी व्यवस्थित भी नहीं हुआ था कि अचानक यह त्रासद घटना हुई। सुबह करीब 11 बजे खबर आई- 'प्रधानमंत्री की हत्या कर दी गई है।' सारा कैंपस स्तब्ध था।

उस शाम पेरियार हॉस्टल में शोकसभा हुई। सैकड़ों छात्र और शिक्षक एकत्र हुए। सभी ने हत्या की निंदा की और शोक व्यक्त किया। छात्रसंघ की ओर से शोक प्रस्ताव जारी हुआ, पर अफवाहों का दौर शुरू हो गया कि 'यूनियन वाले मिठाई बाँट रहे हैं।' यह सरासर झूठ था। इसके बावजूद माहौल तनावपूर्ण हो उठा। हमने छात्रों को सतर्क किया और कैंपस में चौकसी बढ़ाई।

चारों ओर आग और भय : दिल्ली सहित देश के कई हिस्सों में उसी शाम से सिख विरोधी हिंसा भड़क उठी। निर्दोष सिखों के घर, दुकानें और गुरुद्वारे जलाए जाने लगे। लोग घरों में छिपकर जान बचाने को मजबूर थे। उन भयानक दृश्यों की स्मृति आज भी रोंगटे खड़े कर देती है।

मुनीरका, आर.के.पुरम जैसे इलाकों से लगातार आगजनी और लूटपाट की खबरें आ रही थीं। तभी रात में हरिकृष्ण पब्लिक स्कूल से फोन आया- 'हत्यारे गिरोह स्कूल में आग लगा रहे हैं, हमें बचा लो।' सिख शिक्षक और कर्मचारी बाथरूमों में छिपे थे।

कैंपस में कोई हथियार नहीं था, बस साहस था। सोशल साइंस बिल्डिंग के पास रखी लोहे की सरियों से चौकसी की व्यवस्था की गई। कुछ शिक्षकों की कारों और छात्रों की मोटरसाइकिलों की मदद से हम स्कूल पहुँचे और छिपे हुए सिख परिवारों को जोखिम उठाकर सुरक्षित जेएनयू लाए। पहले उन्हें सतलज हॉस्टल में ठहराया गया, बाद में शिक्षकों के घरों में।

डर, विश्वास और मानवीयता : जेएनयू के रजिस्ट्रार उस समय सिख थे। जब मैं उनके घर पहुँचा तो देखा- भय के कारण उन्होंने अपने बाल कटवा लिए थे ताकि पहचान न हो सके। वह दृश्य मुझे आज भी विचलित करता है। मैंने उनसे कहा- 'आप अकेले नहीं हैं, हम सब आपके साथ हैं।' यही आश्वासन मैंने रेक्टर प्रो. अगवानी को भी दिया, जिन पर भी खतरा था।

डाउन कैंपस की एक छोटी दुकान सिख दुकानदार चलाता था। वहाँ पहुँचकर देखा,

दुकान जलाई जा चुकी थी। दिल भर आया, लेकिन हमने निश्चय किया- अब जेएनयू से कोई और सिख डरेगा नहीं।

आग के सामने छात्र : रात-दिन कैंपस में पहरा था। आर.के.पुरम में जब सिखों के घर जलाए जा रहे थे, तब जेएनयू के दो छात्र मोटरसाइकिल पर बाल्टियाँ लेकर पहुंचे और आग बुझाने लगे। पुलिस कहीं नहीं थी, लेकिन छात्रों की हिम्मत ने कई घर बचा लिए। श्रीमती गांधी के अंतिम संस्कार के अगले दिन निर्णय हुआ- दिल्ली में शांति मार्च निकाला जाए। मैंने पुलिस से अनुमति मांगी, पर नकार दी गई। तब भी तय किया- 'जुलूस निकलेगा।'

करीब सात हजार लोग काले बिल्ले लगाकर, हाथों में 'शांति' के पोस्टर लिए जेएनयू से निकले। आर.के.पुरम सेक्टर-१ पर पुलिस ने रास्ता रोका, गिरफ्तारी की धमकी दी। मैंने अधिकारी से कहा- 'इस जुलूस में बड़े लोग हैं, गांधी परिवार से जुड़े। हमें रोकना तुम्हारे लिए भारी पड़ेगा।'

पुलिस पीछे हट गई। जुलूस आगे बढ़ा और लोग रास्ते में शामिल होते चले गए। यह जेएनयू इतिहास का सबसे बड़ा शांति मार्च था- बिना अनुमति, लेकिन पूरी अनुशासन और गरिमा के साथ।

शांति मार्च - जेएनयू की मिसाल : उस दिन कई ऐसे शिक्षक जुलूस में शामिल हुए जिन्होंने अपने जीवन में कभी किसी प्रदर्शन में भाग नहीं लिया था। पर्यावरण विज्ञान के प्रो. शिवतोष मुखर्जी और उनकी पत्नी भी शामिल हुए। देश-विदेश के मीडिया ने इस शांति मार्च को प्रमुखता से दिखाया- यह 1984 के दंगों के बाद देश का पहला संगठित और अहिंसक प्रतिवाद था।

कैंपस लौटकर जब मैंने बताया कि अनुमति नहीं थी, तो छात्रों और शिक्षकों ने एक स्वर में कहा-'अध्यक्ष को गिरफ्तार किया तो हम सबको गिरफ्तार करना होगा।' पुलिस मौन रह गई और लौट गई।

राहत और पुनर्निर्माण : इसके बाद जेएनयू समुदाय राहत कार्य में जुट गया। शरणार्थी शिविरों में जाकर पीड़ित सिख परिवारों की सहायता का निर्णय लिया गया। छात्र-छात्राओं की टीमें रोजाना शहर में जाकर घर-घर से कपड़े, राशन, बर्तन और धन जुटाती थीं। दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रो. जहूर सिद्दीकी जैसे कई शिक्षकों ने भी इस अभियान में भाग लिया।

रात-दिन कैंपस में पहरा था। आर.के.पुरम में जब सिखों के घर जलाए जा रहे थे, तब जेएनयू के दो छात्र मोटरसाइकिल पर बाल्टियाँ लेकर पहुंचे और आग बुझाने लगे। पुलिस कहीं नहीं थी, लेकिन छात्रों की हिम्मत ने कई घर बचा लिए। श्रीमती गांधी के अंतिम संस्कार के अगले दिन निर्णय हुआ- दिल्ली में शांति मार्च निकाला जाए। मैंने पुलिस से अनुमति मांगी, पर नकार दी गई। तब भी तय किया- 'जुलूस निकलेगा।' करीब सात हजार लोग काले बिल्ले लगाकर, हाथों में 'शांति' के पोस्टर लिए जेएनयू से निकले। आर.के.पुरम सेक्टर-1 पर पुलिस ने रास्ता रोका, गिरफ्तारी की धमकी दी। मैंने अधिकारी से कहा- 'इस जुलूस में बड़े लोग हैं, गांधी परिवार से जुड़े। हमें रोकना तुम्हारे लिए भारी पड़ेगा।' पुलिस पीछे हट गई। जुलूस आगे बढ़ा और लोग रास्ते में शामिल होते चले गए। यह जेएनयू इतिहास का सबसे बड़ा शांति मार्च था- बिना अनुमति, लेकिन पूरी अनुशासन और गरिमा के साथ।

हर दिन कैंपस में जुटाई गई सामग्री ट्रकों से राहत शिविरों तक पहुँचाई जाती। प्रत्येक परिवार को घरेलू सामान, बिस्तर और पंद्रह दिन का राशन दिया गया। यह कार्य केवल राहत नहीं, बल्कि सांप्रदायिक सौहार्द और मानवीय एकता का जीवंत उदाहरण था।

बंगाल से मिली एकजुटता : इसी बीच पश्चिम बंगाल के सात विश्वविद्यालयों के छात्रसंघों ने भी सहायता राशि भेजी। तत्कालीन सांसद नेपालदेव भट्टाचार्य जेएनयू आए और कहा- 'यह बंगाल के छात्रों की ओर से मदद है, इसे पीड़ित परिवारों तक पहुँचा दीजिए।'

उस धन से राशन और जरूरी सामग्री खरीदी गई। कुछ ही सप्ताह बाद अकाली दल के अध्यक्ष संत हरचंद सिंह लोंगोवाल, लेखक सरदार महीप सिंह और राज्यपाल सुरजीत सिंह बरनाला जेएनयू आए। झेलम लॉन में आयोजित सभा में संत लोंगोवाल ने कहा- 'सिख जनसंहार के समय मानवता और भाईचारे की मिसाल कायम करने के लिए जेएनयू समुदाय का अकाली दल आभारी है।'

मानवीयता की वह मिसाल : संत लोंगोवाल का यह आभार हमारे लिए सबसे बड़ा पुरस्कार था। जेएनयू ने उस दौर में दिखाया कि विचारों की ताकत किसी हथियार से बड़ी होती है। जब इंसानियत पर हमला हो, तो छात्र, शिक्षक और नागरिक सभी एक हो जाते हैं।

1984 की उस त्रासदी में जेएनयू ने न केवल अपने परिसर को हिंसा से बचाया, बल्कि पूरे देश को एकता और मानवीयता का पाठ पढ़ाया। यह अध्याय भारतीय छात्र आंदोलनों की मानवीय विरासत का स्थायी प्रतीक है- जहाँ गम भी था, साहस भी, और सबसे बढ़कर- इंसानियत ज़िंदा थी।

(जनतांत्रिक मूल्यों के प्रखर प्रहरी, सामाजिक कार्यकर्ता एवं बुद्धिजीवी डॉ. जगदीश्वर चतुर्वेदी जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय छात्र संघ के पूर्व अध्यक्ष हैं)

टीवी समाचार माध्यम की विश्वसनीयता कैसे बहाल करें

डॉ. अनुभव माथुर

विश्वसनीयता किसी भी संस्था या व्यक्ति की सबसे बड़ी पूंजी होती है। इसे अर्जित करने में वर्षों लग जाते हैं, लेकिन इसे खोने में ज्यादा समय नहीं लगता। दुर्भाग्य से, हमारे टीवी पत्रकारिता ने पूरे समाचार माध्यम की विश्वसनीयता को नष्ट करने में बड़ी भूमिका निभाई है। स्थिति अब इतनी गंभीर है कि लगता है मानो वापसी की कोई गुंजाइश नहीं बची। जो लोग मीडिया को लोकतंत्र की आधारशिला मानते हैं, उनके लिए यह गहरी चिंता का विषय है।

बीते वर्षों में टीवी पत्रकारिता ने निस्संदेह काफी प्रगति की है। आज भारत में लगभग 400 समाचार चैनल हैं, जो अंग्रेज़ी और विभिन्न भारतीय भाषाओं में समाचार प्रसारित करते हैं। इनका संयुक्त दर्शक वर्ग लगभग 40 करोड़ तक पहुंचता है। 1960-70 के दशक में जब टीवी की शुरुआत हुई थी, तब इसे विकासशील देशों में विकास का माध्यम और परिवर्तन का सशक्त एजेंट माना गया था- एक 'मैजिक मल्टिप्लायर' के रूप में।

न्यायसंगत रूप से देखा जाए तो भारत में टीवी ने इस भूमिका को बखूबी निभाया है। इसलिए आज टीवी की व्यापक आलोचना और उसकी अस्वीकृति निराशाजनक है। टीवी न तो बुरा है और न ही शैतान।

फिर भी, यह कहना गलत होगा कि टीवी में कोई दोष नहीं। सच्चाई यह है कि टीवी ने खबरों को तुच्छ और सतही बना दिया है। उसने सनसनीखेजी को बढ़ावा दिया है और झूठी खबरों के प्रसार का माध्यम बन गया है। इससे मीडिया की समग्र विश्वसनीयता को गहरा नुकसान पहुंचा है। विश्वसनीयता का ह्रास पत्रकारिता के पेशे और लोकतांत्रिक व्यवस्था दोनों के लिए बड़ा खतरा है, क्योंकि लोकतंत्र विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के बाद पत्रकारिता को चौथा स्तंभ मानता है। इसलिए टीवी पत्रकारिता के स्तर में गिरावट हर संवेदनशील व्यक्ति के लिए चिंता का विषय है।

टीवी पत्रकारिता की गिरती दिशा को लेकर जो चिंताएं उठ रही हैं, वे पूरी तरह जायज हैं। लेकिन जरूरत इस बात की है कि हम इस समस्या को वस्तुपरक और विश्लेषणात्मक दृष्टि से समझें- न कि केवल निंदा या अस्वीकृति के रास्ते पर चलें। नकारात्मकता से न तो समस्या को समझा जा सकता है, न ही उसका समाधान निकलेगा। अब आइए समस्या के कुछ मूल पहलुओं को समझें-

- बहुत कम सार्वजनिक वित्त पोषित चैनल हैं जैसे-दूरदर्शन, लोकसभा टीवी और राज्यसभा टीवी। बाकी सभी निजी चैनलों को अपने संसाधन स्वयं जुटाने होते हैं।
- एक टीवी चैनल चलाना बहुत महंगा व्यवसाय है। विज्ञापन बाजार में प्रतिस्पर्धा इतनी तीव्र है कि धन जुटाना आसान नहीं। इसलिए निजी चैनलों का बंद हो जाना आम बात है।
- अधिक दर्शक संख्या (टीआरपी) किसी चैनल की विज्ञापन बाजार में स्थिति को मज़बूत करती है।
- प्रिंट मीडिया के विपरीत, टीवी दर्शक हमेशा शिक्षित या बौद्धिक नहीं होते। वे अक्सर प्रणाली और संस्थाओं की समझ से वंचित होते हैं।
- चूंकि दर्शक ही किसी भी जनसंचार माध्यम की प्राणवायु होते हैं, इसलिए टीवी चैनलों को अपने कार्यक्रम बनाते समय अशिक्षित या अर्धशिक्षित दर्शकों की पसंद को ध्यान में रखना पड़ता है।

यहीं से समस्या की जड़ शुरू होती है। हमारे अधिकांश चैनल दर्शकों की समझ को ऊँचा उठाने की बजाय उनके स्तर तक खुद को नीचे ले जा रहे हैं। शिक्षित करने और जागरूक बनाने के बजाय, वे अशिक्षा और अंधविश्वास को बढ़ावा दे रहे हैं।

इसी का परिणाम है कि मनोरंजन कार्यक्रमों में 'पाताल की सीढ़ी' या 'सीता माता के रसोईघर की खोज' जैसे हास्यास्पद कार्यक्रम दिखाए जाते हैं, जबकि समाचारों में इतिहास की विकृत व्याख्या की जाती है।

अब सवाल उठता है- रास्ता क्या है? समाधान कठिन है, पर असंभव नहीं। भारत के अशिक्षित और अर्धशिक्षित दर्शक सीखने को हमेशा तैयार रहते हैं, बशर्ते संवादक उन्हें समझे और उनसे संवाद करने की कला जाने। संवाद का सार 'थोपना' नहीं, 'समझना' है -यह बात महात्मा गांधी भलीभांति जानते थे।

हमारी सबसे बड़ी समस्या यह है कि हम अपने दर्शकों को नीचा समझते हैं और स्वयं को उनसे अलग व श्रेष्ठ मानते हैं। अर्नब गोस्वामी जैसे एंकरों का अहंकार इसका प्रमाण है। जब हम गरीब, अशिक्षित या छोटे शहरों के दर्शकों से जुड़ते हैं, तो यह मान लेते हैं कि केवल मूर्खतापूर्ण सामग्री ही उन्हें पसंद आएगी। यही सबसे बड़ी भूल है।

हमारे सामने सबसे बड़ी चुनौती है-सच्चे पेशेवराना दृष्टिकोण की। इसके लिए ज़रूरी है-सुदृढ़ मीडिया शिक्षा, समाज की गहरी समझ, सही दृष्टि, कड़ी मेहनत, ज़मीनी हकीकत से जुड़ाव और सकारात्मक रवैया।

जरूरत है दर्शकों के व्यवहार, आदतों और दृष्टिकोण का गहराई से अध्ययन करने की। इससे हमें यह समझने में मदद मिलेगी कि उन्हें वास्तव में क्या प्रेरित करता है। फिर उसी आधार पर स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार और सामाजिक भागीदारी जैसे विषयों पर प्रभावी और रुचिकर सामग्री बनाई जा सकती है।

इसी दृष्टिकोण से टीवी उद्योग भी लाभान्वित होगा और समाज भी। केवल इसी राह पर चलकर टीवी पत्रकारिता अपनी गिरती विश्वसनीयता और प्रभाव को पुन: प्राप्त कर सकती है।

सांप्रदायिक सद्भाव और मस्जिद का पुनरोद्धार

चंडीगढ़ : पंजाब की सरजमीं ने एक बार फिर 'पंजाबियत' की मिसाल पेश की है। अमृतसर जिले के अजनाला तहसील के रईजादा गाँव में सिख, हिंदू, मुस्लिम, ईसाई और दलित समुदाय के लोगों ने मिलकर 77 साल से बंद पड़ी एक पुरानी मस्जिद का पुनरोद्धार किया और मुसलमानों को सौंप दिया। गाँव के सरपंच सरदार ओंकार सिंह के नेतृत्व में हुआ यह कदम धार्मिक एकता और भाईचारे का प्रतीक बन गया। दशकों बाद इस मस्जिद में जुमे की नमाज़ अदा की गई, जिसमें सभी धर्मों के लोग शामिल हुए।

रावी नदी के किनारे, भारत-पाक सीमा से सटे इस गाँव की यह मस्जिद विभाजन के बाद खंडहर में तब्दील हो गई थी। इसके पास का स्कूल भी वर्षों से बंद था। अब गाँववालों ने एक स्वर में इसे मुस्लिम भाइयों को सौंपते हुए कहा-'यह हमारी साझा विरासत है।' सरपंच ओंकार सिंह बोले, 'पंजाब में हम साथ चलते हैं, अलग नहीं।'

समारोह की अध्यक्षता करते हुए पंजाब के शाही इमाम मौलाना मोहम्मद उस्मान रहमानी लुधियानवी ने कहा कि यह पहल गुरु नानक देव जी की शिक्षाओं की याद दिलाती है, जिन्हें मुस्लिम 'पीर बाबा नानक साहिब' के नाम से सम्मान देते हैं। उन्होंने कहा, 'गुरु गोबिंद सिंह जी को जब युद्ध के समय मुस्लिम भाई नबी खान और गनी खान ने पालकी में सुरक्षित पहुँचाया था, तब भी यही भाईचारा था। हिन्दू दीवान टोडरमल ने गुरु के साहिबजादों के अंतिम संस्कार के लिए अपनी दौलत लुटा दी थी। यही पंजाबियत है- अनेकता में एकता।'

बाढ़ राहत के शहीदों को समर्पित : इस मस्जिद का पुनर्निर्माण दो मुस्लिम स्वयंसेवकों- उत्तराखंड के शमशाद भगवनपुरी और राजस्थान के जकरिया मेवाती-की याद में किया जा रहा है, जिन्होंने 2025 की पंजाब बाढ़ राहत के दौरान जान गंवाई।

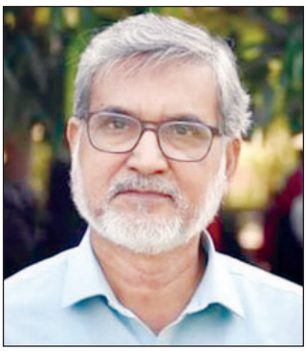

सैय्यद खलिक अहमद

उस वर्ष भारी बारिश और बांधों से निकले पानी ने अमृतसर, गुरदासपुर, फिरोजपुर और पठानकोट में तबाही मचाई थी। लगभग 55 लोगों की मौत और हजारों के बेघर होने पर देशभर की करीब 3,000 मस्जिदों ने शाही इमाम के नेतृत्व में राहत के लिए दो करोड़ रुपये से अधिक एकत्र किए।

शमशाद हफ्तेभर राहत कार्य के बाद यमुनानगर के पास सड़क हादसे में शहीद हुए। जकरिया की मृत्यु खडर-पटियाला हाईवे पर लौटते समय हुई। शाही इमाम ने कहा, 'वे सिर्फ राशन नहीं लाए, मोहब्बत लाए थे। इंसानियत की सेवा में उन्होंने जान दी, पंजाब उनका कर्ज़दार रहेगा।'

रईजादा मस्जिद अब 'मस्जिद शमशाद भगवनपुरी' के नाम से पुनर्निर्मित की जाएगी। पुरानी दीवारों की ईंटें ही नई नींव में लगेंगी और एक स्मृति-फलक पर उनका नाम अंकित होगा। इसी तरह पटियाला ज़िले के फगन माजरा में 'मस्जिद जकरिया मेवाती' बनेगी, जिसकी नींव शहीदों के परिजन रखेंगे।

पंथों के संगम की गूंज : समारोह के अंत में जब पास के गुरुद्वारे से शाम की गुरबानी और मस्जिद से मगरिब की अज़ान एक साथ गूंजी, तो पूरा माहौल भाईचारे से भर उठा। गाँववालों ने मिलकर मिठाइयाँ बाँटीं। यह दृश्य उन अन्य गाँवों की याद दिलाता है जहाँ गैर-मुस्लिमों ने पुरानी मस्जिदें बहाल कीं- जैसे भलूर (मोगा) और शेरपुर सोधियां (संगरूर)। हाल ही में एक सिख परिवार ने नई मस्जिद के लिए जमीन दान की, जिसकी नींव खुद शाही इमाम ने रखी।

बाढ़ के दौरान भी यही सहयोग देखने को मिला-हरियाणा के मेवात से सैकड़ों ट्रक राहत सामग्री पंजाब, हिमाचल और जम्मू-कश्मीर भेजी गई। खालसा ऐड जैसे संगठनों ने भी मिलकर बचाव कार्य किया। एक स्वयंसेवक ने कहा, 'हमारी सेवा का कोई धर्म नहीं-हम सब इंसानियत के बच्चे हैं।'

जीवित है पंजाबियत की परंपरा : पिछले कुछ वर्षों में पंजाब में लगभग 30 मस्जिदें आपसी सहयोग से पुनर्निर्मित हुई हैं। कई जगह सिख दानदाताओं ने ज़मीन या धन दिया। बरनाला के मूम गाँव में 2018 में सिखों ने मस्जिद बनवाई जो गुरुद्वारे की दीवार से सटी है- भूमि ब्राह्मण परिवार ने दी। 2022 में बखतगढ़ में सिख किसान अमनदीप सिंह ने मस्जिद के लिए ज़मीन दी और हिंदू-सिखों ने मिलकर 12 लाख रुपये जुटाए।

मलेरकोटला के उमरपुरा में सरपंच सुखजिंदर सिंह नोनी ने 8 लाख की ज़मीन दान दी और सिख श्रद्धालुओं ने सहयोग किया। संगरूर के नथोवाल में 2015 में गैर-मुस्लिमों ने 25 लाख की मरम्मत लागत का दो-तिहाई हिस्सा उठाया।

ऐतिहासिक उदाहरण भी यही बताते हैं- श्री हरगोबिंदपुर की 17वीं सदी की 'गुरु की मस्जिद' को 2022 में सिखों ने पुनर्जीवित किया, जिसे यूनेस्को ने मान्यता दी।

यह सब पंजाब की आत्मा : सेवा और 'सरबत दा भला'- का जीवंत प्रमाण है। रावी के किनारे जैसे-जैसे सूरज ढला, शाही इमाम ने दुआ की- 'यह मोहब्बत पूरे भारत में फैले, और हर दिल भाईचारे का उजाला बने।' रईजादा में यह सपना पहले ही हकीकत बन चुका है- एक ईंट, एक बंधन के साथ।

गुजरात : आर्थिक विकास और सुशासन के मॉडल में दरारें

प्रो. शिवाजी सरकार

कभी भारत की समृद्धि और सुशासन के आदर्श मॉडल के रूप में पेश किया जाने वाला गुजरात हाल ही में एक राजनीतिक झटके से गुज़रा है। सोलह मंत्रियों ने अचानक इस्तीफ़ा दे दिया और उनकी जगह 25 नए चेहरों को शामिल किया गया, जिनमें 12 पहली बार चुने गए विधायक हैं। यह फेरबदल जिस तेजी से किया गया, उसने उस स्थिरता और सफलता की चमक के नीचे छिपे गहरे असंतोष की ओर इशारा कर दिया है।

भाजपा जैसी पार्टी, जो अनुशासन और निरंतरता पर गर्व करती है, के लिए ऐसा व्यापक फेरबदल असामान्य है। राज्य, जिसे भाजपा का वैचारिक गढ़ माना जाता है, में यह 'दिवाली क्लीन-अप' सवाल खड़े करता है- क्या यह केवल प्रशासनिक सुधार है या फिर भीतर उबल रहे असंतोष और एंटी-इनकंबेंसी को शांत करने की कोशिश?

फेरबदल का अर्थ और पृष्ठभूमि : 16 अक्टूबर को घोषित इस निर्णय के बाद मुख्यमंत्री भूपेंद्र पटेल अपने पुराने मंत्रिमंडल के एकमात्र बचे सदस्य रहे। सूत्रों के अनुसार, यह कदम प्रशासनिक सुस्ती को दूर करने, जनता का भरोसा बहाल करने और आगामी स्थानीय निकाय चुनावों से पहले सरकार को नई ऊर्जा देने के लिए उठाया गया है। स्थानीय परंपरा के अनुसार, दिवाली के बाद का पखवाड़ा अशुभ माना जाता है, इसलिए बड़े बदलाव से पहले यह तेज़ी दिखाई गई।

नया शक्ति केंद्र- हर्ष सांघवी का उदय : नए नेताओं में प्रमुख हैं हर्ष सांघवी, जैन समुदाय से आने वाले युवा नेता जिन्हें गृह विभाग की जिम्मेदारी सौंपी गई है- जो पारंपरिक रूप से मुख्यमंत्री के पास रहता है। इससे उनके बढ़ते प्रभाव का संकेत मिलता है। सांघवी चिमनभाई पटेल के दौर से अब तक छठे उपमुख्यमंत्री हैं, जो दिखाता है कि गुजरात भाजपा में भी राजनीतिक संतुलन बनाए रखना अब भी जरूरी है।

चमक के नीचे छिपे संकट : गुजरात औद्योगिक उत्पादन, वित्तीय अनुशासन और आधारभूत ढांचे में देश में अग्रणी है, लेकिन हालिया आंकड़े एक विरोधाभास उजागर करते हैं। भारतीय रिज़र्व बैंक (RBI) की रिपोर्ट बताती है कि गुजरात और मध्य प्रदेश में देश के सबसे कम दैनिक मजदूरी दरें हैं। नीति आयोग के मानव विकास सूचकांक भी यही बताते हैं- समृद्धि कुछ के लिए, असुरक्षा बहुतों के लिए।

गांधी रोजगार योजना में 71 करोड़ का घोटाला : 'गुजरात मॉडल' की चमक को सबसे बड़ा झटका दाहोद जिले में मनरेगा योजना में 71 करोड़ रुपये के घोटाले से लगा। जांच में पाया गया कि फर्जी दस्तावेजों के ज़रिए धन की हेराफेरी की गई। इस घोटाले में तत्कालीन पंचायत और कृषि राज्य मंत्री बचुभाई खाबड़ के बेटे मुख्य आरोपी के रूप में गिरफ्तार हुए। इस घटना ने सरकार की छवि को गहरा धक्का दिया और प्रशासनिक ढीलापन उजागर कर दिया।

वडोदरा पुल हादसा और जवाबदेही का अभाव : जुलाई 2025 में वडोदरा के गंभीर पुल का हिस्सा ढह गया, जिससे 22 लोगों की मौत हो गई। स्थानीय लोगों ने वर्षों से चेतावनी दी थी, लेकिन कोई कार्रवाई नहीं हुई। चार इंजीनियरों को निलंबित किया गया, पर असली जिम्मेदारी तय नहीं हो सकी।

पार्टी के भीतर झगड़े और अनुशासनहीनता : 14 अक्टूबर को दो भाजपा विधायकों में सड़क निर्माण को लेकर हाथापाई हो गई। यह घटना कैमरे में कैद हुई और पार्टी नेतृत्व के लिए शर्मिंदगी का कारण बनी। कहा जा रहा है कि इसी के बाद फेरबदल की प्रक्रिया तेज हुई।

गुजरात की औद्योगिक ताकत : गुजरात भारत के रासायनिक उत्पादन का एक-तिहाई और पेट्रोकेमिकल उत्पादन का 62 प्रतिशत योगदान देता है। कांडला, मुंद्रा और दहेज जैसे बंदरगाह मिलकर देश के 40 प्रतिशत माल और 30 प्रतिशत निर्यात को संभालते हैं। राज्य की 33 लाख से अधिक सूक्ष्म, लघु और मध्यम इकाइयाँ (MSME) अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं।

वित्त वर्ष 2023-24 में गुजरात बैंक वित्तपोषित औद्योगिक परियोजनाओं का शीर्ष गंतव्य बना, जो निवेशकों के निरंतर विश्वास का प्रमाण है।

दूसरा गुजरात-असमानता की कहानी : नीति आयोग के बहुआयामी गरीबी सूचकांक (MPI) के अनुसार, गुजरात की लगभग 38 प्रतिशत आबादी कुपोषित है। ग्रामीण इलाकों में लगभग आधी जनसंख्या पोषण की कमी से जूझ रही है- यह आंकड़ा उस राज्य के लिए चौंकाने वाला है जिसे देश का 'विकास इंजन' कहा जाता है।

इसके अलावा, 23.3 प्रतिशत लोग अपर्याप्त आवास में रहते हैं, खासकर दाहोद, नर्मदा और छोटा उदेपुर जिलों में। इसके विपरीत, सूरत और अहमदाबाद जैसे शहरों में प्रति व्यक्ति आय देश में सबसे

अधिक है। शहरी समृद्धि और ग्रामीण पिछड़ेपन का अंतर पहले से कहीं ज्यादा बढ़ गया है।

पिछले पांच वर्षों में 7,269 MSME इकाइयाँ बंद हुईं, जिससे 33,000 से अधिक नौकरियाँ चली गईं। ग्रामीण इलाकों से मजदूरों का पलायन लगातार जारी है- वे या तो औद्योगिक क्षेत्रों में जा रहे हैं या अन्य राज्यों में काम की तलाश कर रहे हैं।

विकास, लेकिन समावेश के बिना : गुजरात में गरीबी की तीव्रता भले घट रही हो, लेकिन गरीबी अनुपात के मामले में यह तेलंगाना, महाराष्ट्र और तमिलनाडु से पीछे है। औद्योगीकरण के लाभ समान रूप से नहीं पहुंचे। औपचारिक क्षेत्र में रोजगार सीमित हैं और वेतन असमानताएं गहरी हैं।

श्रम बाजार सक्रिय है, लेकिन उसमें अनौपचारिकता और सामाजिक सुरक्षा की कमी प्रमुख है। उत्पादन-आधारित नीति ने मानव विकास को पीछे छोड़ दिया है।

'गुजरात मॉडल' की उलझनें : गुजरात का विरोधाभास यही है- आर्थिक चमक और मानवीय अभाव का सह-अस्तित्व। उद्योग, लॉजिस्टिक्स और निर्यात में सफलता के बावजूद स्वास्थ्य, शिक्षा और कल्याण में निवेश कम है। नीति आयोग के सतत विकास लक्ष्य (SDG) सूचकांक के अनुसार, गुजरात 'उद्योग, नवाचार और बुनियादी ढांचे' में मजबूत है, लेकिन 'भूखमुक्ति' और 'स्वास्थ्य' जैसे लक्ष्यों पर पिछड़ा है। यह दिखाता है कि केवल आर्थिक विस्तार से सामाजिक समानता नहीं आती।

आगे की राह-विकास से समावेशन की ओर : अब गुजरात की असली चुनौती नई फैक्टरियाँ या हाईवे बनाना नहीं, बल्कि मानव पूंजी का निर्माण है। राज्य की राजकोषीय ताकत और औद्योगिक संपन्नता को पोषण, स्वास्थ्य, आवास और शिक्षा की ओर मोड़ने की जरूरत है।

भूपेंद्र पटेल सरकार का यह बड़ा फेरबदल अल्पकालिक प्रशासनिक राहत दे सकता है, लेकिन यह गुजरात के गहरे विभाजन को नहीं भर पाएगा। जब तक शासन समावेशी विकास की दिशा में नहीं बढ़ता, 'गुजरात मॉडल' एक चेतावनी की कहानी बन सकता है- ऐसी सफलता जिसकी जड़ें सामाजिक असमानता में हैं।

वह राज्य जो खुद को भारत की विकास प्रयोगशाला कहता है, अब उसे सामाजिक समानता की प्रयोगशाला भी बनना होगा। ग्रामीण स्वास्थ्य सेवाओं को सशक्त करना, पोषण योजनाओं को मजबूत करना, गुणवत्तापूर्ण रोजगार सृजित करना और यह सुनिश्चित करना कि समृद्धि केवल बंदरगाहों और औद्योगिक गलियारों तक सीमित न रहे- यही गुजरात का अगला चरण होना चाहिए।

गुजरात की कहानी आज भी विरोधाभासों से भरी है- जहाँ एक ओर चमचमाती एक्सप्रेसवे हैं, वहीं दूसरी ओर कुपोषित बच्चे; जहाँ राजनीतिक स्थिरता है, वहीं सामाजिक नाजुकता। यह बड़ा फेरबदल शायद एक गहरे आत्ममंथन की शुरुआत भर है- उस अधूरे विकास एजेंडा से निपटने की, जिसे अब तक नजरअंदाज किया गया है।

(प्रो. शिवाजी सरकार वरिष्ठ पत्रकार और मीडिया कार्यकर्ता हैं। वे वित्तीय और आर्थिक विषयों के विश्लेषण में विशेषज्ञ हैं)

गुजरात भारत के रासायनिक उत्पादन का एक-तिहाई और पेट्रोकेमिकल उत्पादन का 62 प्रतिशत योगदान देता है। कांडला, मुंद्रा और दहेज जैसे बंदरगाह मिलकर देश के 40 प्रतिशत माल और 30 प्रतिशत निर्यात को संभालते हैं। राज्य की 33 लाख से अधिक सूक्ष्म, लघु और मध्यम इकाइयाँ अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं। वित्त वर्ष 2023-24 में गुजरात बैंक वित्तपोषित औद्योगिक परियोजनाओं का शीर्ष गंतव्य बना, जो निवेशकों के निरंतर विश्वास का प्रमाण है। गुजरात की लगभग 38 प्रतिशत आबादी कुपोषित है। ग्रामीण इलाकों में लगभग आधी जनसंख्या पोषण की कमी से जूझ रही है- यह आंकड़ा उस राज्य के लिए चौंकाने वाला है जिसे देश का 'विकास इंजन' कहा जाता है। इसके अलावा, 23.3 प्रतिशत लोग अपर्याप्त आवास में रहते हैं, खासकर दाहोद, नर्मदा और छोटा उदेपुर जिलों में। इसके विपरीत, सूरत और अहमदाबाद जैसे शहरों में प्रति व्यक्ति आय देश में सबसे अधिक है। शहरी समृद्धि और ग्रामीण पिछड़ेपन का अंतर पहले से कहीं ज्यादा बढ़ गया है। पिछले पांच वर्षों में 7,269 इकाइयाँ बंद हुईं, जिससे 33,000 से अधिक नौकरियाँ चली गईं। ग्रामीण इलाकों से मजदूरों का पलायन लगातार जारी है- वे या तो औद्योगिक क्षेत्रों में जा रहे हैं या अन्य राज्यों में काम की तलाश कर रहे हैं। विकास, लेकिन समावेश के बिना : गुजरात में गरीबी की तीव्रता भले घट रही हो, लेकिन गरीबी अनुपात के मामले में यह तेलंगाना, महाराष्ट्र और तमिलनाडु से पीछे है। औद्योगीकरण के लाभ समान रूप से नहीं पहुंचे। औपचारिक क्षेत्र में रोजगार सीमित हैं और वेतन असमानताएं गहरी हैं।

आम बच्चों का जीवन कैसे सुधरें...

(यह लेख स्वर्गीय डॉ. रमा सहारिया की पुस्तक 'अंडरस्टैंडिंग चाइल्ड साइकोलॉजी' से लिया गया है, जो अब प्रकाशनाधीन है। यह पुस्तक बच्चों के व्यवहार और उनके विकास के विभिन्न पहलुओं पर उनके लेखों का संग्रह है, जो कई अंग्रेजी और हिंदी समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं- संपादक)

विश्व के विभिन्न हिस्सों में आयोजित विश्व बाल शिखर सम्मेलनों का उद्देश्य बच्चों को जीवन में बेहतर अवसर और सुविधाएँ प्रदान करना है। विश्व के नेता, समाजसेवी और विचारक लगातार मिलकर बच्चों की स्थिति, उनके अधिकारों और भविष्य की दिशा पर विचार करते हैं। परंतु, आज भी विकासशील देशों में बच्चों की दशा अत्यंत चिंताजनक है।

भविष्य की बुनियाद : किसी भी समाज का भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि वह अपने बच्चों की सुरक्षा, शिक्षा और विकास के लिए क्या योजनाएँ बनाता है। भारत में आज भी लाखों बच्चे गरीबी, कुपोषण और अभाव से जूझ रहे हैं। यह स्थिति न केवल उनके विकास को रोकती है बल्कि उनके सपनों और संभावनाओं को भी छीन लेती है।

कई विकासशील देशों में हर 1000 नवजात शिशुओं में से 100 से 200 बच्चे अपने पहले जन्मदिन से पहले ही मर जाते हैं, जबकि विकसित देशों में यह संख्या 10 से 20 तक सिमट गई है। टिटनेस,

मीडिया मैप न्यूज नेटवर्क

डिप्थीरिया और काली खाँसी जैसी बीमारियों से हर साल लाखों बच्चे मरते हैं। सिर्फ टिटनेस से ही लगभग आठ लाख नवजातों की जान जाती है।

यूनिसेफ ने बच्चों के कल्याण के लिए विश्व स्तर पर प्रभावी पहल की है। यह संस्था हर वर्ष लगभग 100 मिलियन डॉलर खर्च करती है ताकि विकासशील देशों के बच्चों को पोषण, शिक्षा, पेयजल, स्वास्थ्य और आवास जैसी सुविधाएँ मिल सकें।

क्या यही उनकी नियति है : क्या समाज का दायित्व केवल बच्चों को जन्म देना है? क्या उन्हें रोग, भूख और निराशा में जीने देना ही हमारी जिम्मेदारी का अंत है? बच्चों की सूनी आँखें और काँपते हाथ हमारे सामाजिक विवेक पर प्रश्नचिह्न हैं।

स्वास्थ्य केवल बीमारी का अभाव नहीं बल्कि शारीरिक, मानसिक और सामाजिक रूप से पूर्ण स्वस्थ जीवन की स्थिति है। इसी सोच के साथ विश्व समुदाय ने १९८९ में बाल अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र अभिसमय को स्वीकार किया, जिसे ९० देशों ने समर्थन दिया, जिनमें ३० अफ्रीकी देश शामिल हैं।

स्वास्थ्य और पोषण की आवश्यकता : बच्चों के लिए पोषण जितना आवश्यक है, उतना ही उन्हें संक्रामक बीमारियों से मुक्त करना भी ज़रूरी है। 1990 के दशक में शुरू हुए वैश्विक टीकाकरण अभियान ने उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की। भारत ने भी अपने 60 प्रतिशत लक्ष्य तक पहुँचने में सफलता पाई है। परंतु अभी भी कई देशों में यह प्रयास कमजोर हैं, जहाँ सहयोग और संसाधनों की कमी है।

युद्ध और असुरक्षा : बच्चों के सामने एक और बड़ा खतरा युद्ध और उससे उपजी अस्थिरता है। युद्ध न केवल उनके जीवन की सुरक्षा छीनता है, बल्कि उनके मानसिक और बौद्धिक विकास को भी प्रभावित करता है। विस्थापन और निर्धनता के कारण लाखों बच्चे शिक्षा से वंचित रह जाते हैं।

यूनिसेफ की भूमिका : यूनिसेफ (UNICEF) ने बच्चों के कल्याण के लिए विश्व स्तर पर प्रभावी पहल की है। यह संस्था हर वर्ष लगभग 100 मिलियन डॉलर खर्च करती है ताकि विकासशील देशों के बच्चों को पोषण, शिक्षा, पेयजल, स्वास्थ्य और आवास जैसी सुविधाएँ मिल सकें। कलाकारों, शिक्षकों, राजनेताओं, मजदूर समूहों और मीडिया को इस अभियान से जोड़ना यूनिसेफ की बड़ी उपलब्धि है। बच्चे वास्तव में शांति के दूत हैं- उनकी सुरक्षा और विकास ही मानवता की असली विजय है।

बाल श्रम : एक गहरा कलंक : भारत में बाल श्रम की समस्या गंभीर रूप ले चुकी है। चाइल्ड लेबर एक्शन नेटवर्क के अनुसार देश में लगभग दो करोड़ बच्चे आज भी मजदूरी कर रहे हैं। तेज़ी से बढ़ते औद्योगिकीकरण और ग्रामीण पलायन ने इस स्थिति को और बदतर बना दिया है।

पूर्वी उत्तर प्रदेश के भदोही और मिर्जापुर जैसे इलाकों में कालीन उद्योग में पाँच लाख से अधिक वयस्क और बच्चे काम करते हैं। इनमें अनेक बच्चे 8 से 15 वर्ष की आयु के हैं, जो बिहार और नेपाल से गरीबी के कारण यहाँ काम करने आते हैं। बनारस की रेशम और ज़री की साड़ियों की चमक भी इन्हीं नन्हें हाथों की मेहनत का परिणाम है।

तमिलनाडु के शिवकाशी में लगभग : 45,000 बच्चे पटाखे और माचिस उद्योग में काम करते हैं। मध्य प्रदेश के मंदसौर में बच्चे खदानों में काम करते हुए सिलिकोसिस जैसी घातक बीमारी के शिकार हो जाते हैं। फिरोज़ाबाद में 50,000 से अधिक बच्चे काँच की चूड़ियाँ और झूमर बनाते हैं, जहाँ 1000 डिग्री तापमान में काम करने से उनकी आँखें और फेफड़े नष्ट हो जाते हैं।

बीबीसी द्वारा कुछ वर्ष पहले दिखाए गए एक वृत्तचित्र में बच्चों के घायल हाथों की तस्वीरों ने यूरोपीय देशों को झकझोर दिया। इसके बाद यूरोपीय संघ ने भारतीय कालीनों के आयात पर प्रतिबंध लगाया। इससे उद्योग को तो नुकसान हुआ, पर दुनिया का ध्यान बाल श्रम की अमानवीय स्थिति की ओर गया।

शिक्षा और जागरूकता ही समाधान : बाल श्रम का सीधा संबंध अशिक्षा से है। भारत आज विश्व में निरक्षरों और बाल श्रमिकों की सबसे बड़ी संख्या वाला देश है। 6 से 14 वर्ष की आयु के लगभग 4.1 करोड़ बच्चे स्कूल नहीं जाते। पारंपरिक पारिवारिक व्यवसाय और गरीबी इस स्थिति को और बढ़ाते हैं।

समाज, अभिभावकों और नियोक्ताओं- सभी की सोच में परिवर्तन की आवश्यकता है। जो भी व्यक्ति बच्चों से जुड़ा है, उसे पहले अपनी मानसिकता बदलनी होगी। हर प्रयास होना चाहिए कि बच्चे मुख्यधारा में लौटें, शिक्षा प्राप्त करें और गरिमामय जीवन जी सकें।

निष्कर्ष : बच्चों को स्वस्थ, स्वतंत्र और सम्मानजनक वातावरण में बढ़ने का अवसर मिलना चाहिए। उन्हें अधिक कुछ नहीं चाहिए—बस थोड़ा प्यार, सुरक्षा और खेलने-पढ़ने की आज़ादी। जब समाज उन्हें यह सब देगा, तभी हम सच में अपने बच्चों के प्रति ईमानदार हो पाएँगे। ♦♦

कई विकासशील देशों में हर 1000 नवजात शिशुओं में से 100 से 200 बच्चे अपने पहले जन्मदिन से पहले ही मर जाते हैं, जबकि विकसित देशों में यह संख्या 10 से 20 तक सिमट गई है।

टिटनेस, डिप्थीरिया और काली खाँसी जैसी बीमारियों से हर साल लाखों बच्चे मरते हैं। सिर्फ टिटनेस से ही लगभग आठ लाख नवजातों की जान जाती है।

क्या यही उनकी नियति है : क्या समाज का दायित्व केवल बच्चों को जन्म देना है? क्या उन्हें रोग, भूख और निराशा में जीने देना ही हमारी जिम्मेदारी का अंत है? बच्चों की सूनी आँखें और काँपते हाथ हमारे सामाजिक विवेक पर प्रश्नचिह्न हैं।

स्वास्थ्य केवल बीमारी का अभाव नहीं बल्कि शारीरिक, मानसिक और सामाजिक रूप से पूर्ण स्वस्थ जीवन की स्थिति है। इसी सोच के साथ विश्व समुदाय ने 1989 में बाल अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र अभिसमय को स्वीकार किया, जिसे 90 देशों ने समर्थन दिया, जिनमें 30 अफ्रीकी देश शामिल हैं।

स्वास्थ्य और पोषण की आवश्यकता : बच्चों के लिए पोषण जितना आवश्यक है, उतना ही उन्हें संक्रामक बीमारियों से मुक्त करना भी ज़रूरी है।

1990 के दशक में शुरू हुए वैश्विक टीकाकरण अभियान ने उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की। भारत ने भी अपने 60 प्रतिशत लक्ष्य तक पहुँचने में सफलता पाई है। परंतु अभी भी कई देशों में यह प्रयास कमजोर हैं, जहाँ सहयोग और संसाधनों की कमी है।

स्वैच्छिक मानकों की दुनिया को कैसे समझें

विश्वभर में यह सामान्य प्रथा है कि जिन उत्पादों और सेवाओं का सीधा संबंध स्वास्थ्य, सुरक्षा या पर्यावरण से होता है, उनके लिए 'मानक' कानूनी रूप से अनिवार्य बनाए जाते हैं। खाद्य पदार्थों और औषधियों के उदाहरण सबसे सामान्य हैं-चाहे अमेरिका हो, भारत या भूटान, ये क्षेत्र सख्त रूप से विनियमित हैं। पर्यावरण संबंधी नियम भी इसी श्रेणी में आते हैं।

इन अनिवार्य मानकों के अतिरिक्त, एक पूरी दुनिया 'स्वैच्छिक मानकों' (Voluntary Standards) की भी है- यहां तक कि विनियमित क्षेत्रों जैसे खाद्य या स्वास्थ्य सेवा में भी। ये मानक बाध्यकारी नहीं होते, कोई व्यवसाय इन्हें अपनाए या न अपनाए, यह पूरी तरह उसके अपने निर्णय पर निर्भर करता है कि उसे इससे कितना लाभ मिलेगा। उदाहरण के लिए, गुणवत्ता प्रबंधन प्रणाली हेतु 'ISO 9001' एक अत्यंत लोकप्रिय वैश्विक मानक है, जिसे पहली बार 1987 में प्रकाशित किया गया था और आज यह दुनिया में सबसे अधिक प्रमाणित मानक है। अंतरराष्ट्रीय मानकीकरण संगठन (ISO) द्वारा किए गए सर्वेक्षण के अनुसार, वर्तमान में 14.7 लाख प्रमाणपत्र जारी किए गए हैं जो 23.2 लाख स्थलों को कवर करते हैं।

विकसित अर्थव्यवस्थाओं में भूमिका स्पष्ट होती है- सरकारें नियमन (Regulation) की ज़िम्मेदारी निभाती हैं, जबकि स्वैच्छिक मानक बाज़ार और हितधारक, विशेष रूप से उद्योग जगत, द्वारा संचालित होते हैं। अमेरिका या यूरोप जैसे देशों में राष्ट्रीय मानक निकाय (National Standards Bodies) निजी या गैर-सरकारी क्षेत्र में उद्योग-नेतृत्व वाले संस्थान हैं।

विकासशील देशों में स्थिति भिन्न है। वहां उद्योग और अन्य हितधारक इतने मज़बूत नहीं रहे कि स्वैच्छिक मानकीकरण को अपने दम पर चला सकें, इसलिए सरकारों ने पहल करते हुए राष्ट्रीय मानक संस्थान स्थापित किए। भारत

अनिल जौहरी

इसका प्रमुख उदाहरण है, जहां सरकार ने 1947 में स्वतंत्रता से पहले ही 'भारतीय मानक संस्थान (Indian Standards Institution-ISI)' की स्थापना एक गैर-लाभकारी संस्था के रूप में की, जिसे लोकप्रिय 'ISI मार्क' के रूप में जाना जाता है। बाद में 1986 में भारतीय मानक ब्यूरो (Bureau of Indian Standards-BIS) अधिनियम बनाकर इसे एक वैधानिक संस्था में परिवर्तित किया गया।

ISI से भी पहले, भारत ने कृषि उत्पादों के लिए 1937 के कृषि उपज (ग्रेडिंग और मार्किंग) अधिनियम के तहत Agmark नामक स्वैच्छिक मानक और प्रमाणन प्रणाली स्थापित कर दी थी। हमारे पड़ोसी देशों, खाड़ी देशों और अफ्रीका में भी राष्ट्रीय मानक निकाय आज तक सरकारी नियंत्रण में हैं, यद्यपि वे स्वैच्छिक मानक तैयार करते हैं। इसी प्रकार 'मान्यता' (Accreditation) का क्षेत्र भी है-जो निरीक्षण एजेंसियों, परीक्षण प्रयोगशालाओं या प्रमाणन निकायों की क्षमता का आकलन करता है, जैसे कि ISO 9001 के लिए प्रमाणन निकाय। विश्व के बड़े हिस्से में यह गतिविधि स्वैच्छिक होती है, भले ही विकासशील देशों में यह सरकारी स्वामित्व में संचालित हो। विकसित देशों में ऐसे निकाय प्राय: निजी क्षेत्र में होते हैं।

शिक्षा या स्वास्थ्य जैसे क्षेत्रों में भी विकसित देशों में मान्यता (Accreditation) स्वैच्छिक और निजी होती है, जबकि विकासशील देशों में सरकारें इसकी शुरुआत करती हैं और इसे अपने संस्थानों के माध्यम से संचालित करती हैं। यूरोपीय आयोग ने 2008 में एक बड़ा कदम उठाया जब उसने 'Regulation 765/2008स' अपनाया, जिसके तहत प्रत्येक देश में एकल राष्ट्रीय मान्यता निकाय की व्यवस्था निर्धारित की गई, हालांकि इसकी प्रकृति अब भी स्वैच्छिक ही है।

नियमित (Regulated) और स्वैच्छिक (Voluntary) क्षेत्रों के बीच एक और बड़ा अंतर यह है कि नियमित क्षेत्र में आम तौर पर एक ही नियामक होता है- जैसे भारत में खाद्य के लिए FSSAI, दवाओं के लिए CDSCO, दूरसंचार के लिए TRAI, या राज्यों के स्तर पर स्वास्थ्य सेवा के नियामक। लेकिन स्वैच्छिक क्षेत्र में अनेक पहलें होती हैं क्योंकि किसी को भी मानक विकसित करने से कानूनी रूप से रोका नहीं गया है। भारत में भी यह विविधता स्पष्ट दिखती है- यद्यपि BIS राष्ट्रीय मानक निकाय है, फिर भी 'गुणवत्ता परिषद (QCI)' के अंतर्गत राष्ट्रीय अस्पताल एवं स्वास्थ्यसेवा प्रदाता प्रत्यायन बोर्ड (NABH) ने अपने मानक विकसित किए हैं, जबकि उन्हीं विषयों पर BIS के मानक भी मौजूद हैं। इसी प्रकार, कृषि में Ind G.A.P., स्वच्छता और खाद्य सुरक्षा के लिए India HACCP, और हाल ही में राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड (NHB) द्वारा शुरू किया गया Bharat GAP मानक इस विविधता को और बढ़ाता है।

वैश्विक स्तर पर भी यही स्थिति है- जर्मनी आधारित Global G.A.P. मानक यूरोपीय बाज़ार में प्रवेश के लिए अनिवार्य पूर्वशर्त जैसा बन गया है, यद्यपि इसे सरकारों ने नहीं, बल्कि खरीदारों ने निर्धारित किया है। दुनिया में 300 से अधिक निजी 'सस्टेनेबिलिटी' (Sustainability) मानक और प्रमाणन प्रणालियाँ प्रचलित हैं, जिन्हें Standards Map पर देखा जा सकता है। इनमें से कई का भारतीय उद्योग, विशेषकर कृषि-खाद्य और वस्त्र क्षेत्र, पर सीधा प्रभाव पड़ता है। ऐसे मानकों के बिना प्रमाणन के, विकसित बाज़ारों में प्रवेश संभव नहीं होता।

अत: यह समझना आवश्यक है कि स्वैच्छिक क्षेत्र में विविधता और प्रतिस्पर्धा स्वाभाविक है- और हमें इसके लिए तैयार रहना चाहिए। विश्व स्तर पर स्वैच्छिक

क्षेत्रों में 'वैश्विक मान्यता' के लिए निजी क्षेत्र में ऐसे संगठन स्वत: विकसित हुए हैं जो विभिन्न मानकों और प्रमाणनों को मान्यता (Endorsement) देते हैं। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि जब सरकार ने दूरसंचार या बीमा जैसे क्षेत्रों में निजी भागीदारी की अनुमति दी, तो साथ ही नियामक संस्थाएँ भी स्थापित कीं ताकि निगरानी बनी रहे। इसी तरह, स्वैच्छिक क्षेत्र में भी समान संतुलन और जवाबदेही सुनिश्चित करनी होगी। जैसे-

- Global Food Safety Initiative (GFSI) जो खाद्य सुरक्षा मानकों का बेंचमार्क करता है,
- Programme for the Endorsement of Forest Certification (PEFC) जो वानिकी संबंधी मानकों को मान्यता देता है।
- ISQua Eternal Evaluation Association (ISQua EEA) जो अस्पताल मानकों और प्रत्यायनों को मान्यता प्रदान करता है।

यदि भारत को वैश्विक स्वीकृति और पहचान चाहिए, तो संबंधित संस्थानों- चाहे वे सरकारी हों जैसे BIS या QCI, या शिक्षा क्षेत्र में NAAC, या चिकित्सा में NMC- को ऐसे अंतरराष्ट्रीय बेंचमार्किंग मूल्यांकनों से गुजरना होगा।

याद रखना चाहिए कि चाहे कोई संस्था सरकारी ही क्यों न हो, यदि वह स्वैच्छिक क्षेत्र में कार्यरत है, तो उसे उसी के नियमों के अनुसार कार्य करना होगा। कई सरकारी संस्थाएँ यह बात समझ चुकी हैं, परंतु कुछ में अभी भी स्पष्टता नहीं है।

BIS एक वैधानिक निकाय है, फिर भी यह ISO, जो कि एक निजी, गैर-सरकारी संस्था है, का सदस्य है। यदि BIS यह चाहता है कि उसके मानक- जैसे HACCP या GAP- को वैश्विक स्वीकृति मिले, तो उसे GFSI जैसे मंचों से जुड़ना होगा। इसी प्रकार, QCI के अंतर्गत 'NABH' 'ISQua EEA' का सदस्य है, और 'प्रमाणन निकायों का राष्ट्रीय प्रत्यायन बोर्ड (NABCB)' तथा 'परीक्षण एवं अंशांकन प्रयोगशालाओं का राष्ट्रीय प्रत्यायन बोर्ड (NABL)' क्रमश: International Accreditation Forum (IAF) और International Laboratory Accreditation Cooperation (ILAC) के सदस्य हैं- दोनों ही निजी, गैर-लाभकारी संस्थाएँ हैं।

यह देश और उद्योग, दोनों के हित में है कि हम अपनी मानक प्रणालियों, मूल्यांकन और प्रत्यायनों को इन वैश्विक स्वैच्छिक बेंचमार्कों की कसौटी पर परखें और उत्कृष्टता सिद्ध करें। इस क्षेत्र में अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भारत की उपस्थिति अभी भी सीमित है-यह सुधार का विषय है।

जैसे-जैसे हम 2047 तक विकसित अर्थव्यवस्था बनने का सपना देखते हैं, यह स्वीकार करना होगा कि बौद्धिक क्षमता और विशेषज्ञता के मामले में हम अब बहुत आगे हैं। अब समय है कि सरकार और सभी हितधारक- उद्योग, व्यापार, अकादमिक जगत और नागरिक समाज- अपनी भूमिकाओं को स्पष्ट रूप से अलग करें। सरकार को केवल नियमन पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए और स्वैच्छिक क्षेत्र को गैर-सरकारी संस्थाओं पर छोड़ देना चाहिए।

हालांकि, स्वैच्छिक क्षेत्र में अनैतिक प्रथाओं (जैसे ISO 9001 प्रमाणन, ऑर्गेनिक प्रमाणन या कार्बन बाजार) के जोखिम को देखते हुए सरकार को इसकी निगरानी हेतु कुछ नियामक प्रावधान अवश्य करने चाहिए। सरकार अधिकतम इतना कर सकती है कि वह स्वैच्छिक पहलों के लिए पारदर्शी और परिभाषित मानदंडों पर आधारित बेंचमार्किंग प्रणाली विकसित करे- जैसे Ecomark नियमों में अन्य ईकोलेबल्स को मान्यता देने का प्रावधान किया गया है या 'आयुष मंत्रालय' अपने Ayush Quality Mark Programme (Ayush Export Promotion Council) के तहत कर रहा है।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि जब सरकार ने दूरसंचार या बीमा जैसे क्षेत्रों में निजी भागीदारी की अनुमति दी, तो साथ ही नियामक संस्थाएँ भी स्थापित कीं ताकि निगरानी बनी रहे। इसी तरह, स्वैच्छिक क्षेत्र में भी समान संतुलन और जवाबदेही सुनिश्चित करनी होगी।

(लेखक नेशनल एक्रेडिटेशन बोर्ड फॉर सर्टिफिकेशन बॉडीज़ के पूर्व मुख्य कार्यकारी अधिकारी और मानकीकरण के क्षेत्र में एक अंतरराष्ट्रीय प्राधिकरण हैं)

♦♦

नियमित और स्वैच्छिक क्षेत्रों के बीच एक और बड़ा अंतर यह है कि नियमित क्षेत्र में आम तौर पर एक ही नियामक होता है- जैसे भारत में खाद्य के लिए FSSAI, दवाओं के लिए CDSCO, दूरसंचार के लिए TRAI, या राज्यों के स्तर पर स्वास्थ्य सेवा के नियामक। लेकिन स्वैच्छिक क्षेत्र में अनेक पहलें होती हैं क्योंकि किसी को भी मानक विकसित करने से कानूनी रूप से रोका नहीं गया है। भारत में भी यह विविधता स्पष्ट दिखती है- यद्यपि BIS राष्ट्रीय मानक निकाय है, फिर भी 'गुणवत्ता परिषद (QCI)' के अंतर्गत राष्ट्रीय अस्पताल एवं स्वास्थ्यसेवा प्रदाता प्रत्यायन बोर्ड (NABH) ने अपने मानक विकसित किए हैं, जबकि उन्हीं विषयों पर BIS के मानक भी मौजूद हैं। इसी प्रकार, कृषि में Ind G.A.P., स्वच्छता और खाद्य सुरक्षा के लिए India HACCP, और हाल ही में राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड (NHB) द्वारा शुरू किया गया Bharat GAP मानक इस विविधता को और बढ़ाता है। वैश्विक स्तर पर भी यही स्थिति है- जर्मनी आधारित मानक यूरोपीय बाज़ार में प्रवेश के लिए अनिवार्य पूर्वशर्त जैसा बन गया है, यद्यपि इसे सरकारों ने नहीं, बल्कि खरीदारों ने निर्धारित किया है। दुनिया में 300 से अधिक निजी 'सस्टेनेबिलिटी' मानक और प्रमाणन प्रणालियाँ प्रचलित हैं, जिन्हें Standards Map पर देखा जा सकता है। इनमें से कई का भारतीय उद्योग, विशेषकर कृषि-खाद्य और वस्त्र क्षेत्र, पर सीधा प्रभाव पड़ता है।

♦♦

अब आया एक दिवसीय टेस्ट क्रिकेट का युग

प्रभजोत सिंह

पारंपरिक टेस्ट क्रिकेट के लिए मानो जीवन पूरा चक्र पूरा कर चुका है। कभी तीन से पाँच दिनों तक खेल का विस्तार करने के लिए मशहूर यह प्रारूप अब फिर से संक्षिप्त होने की दिशा में लौट रहा है- एक नए वन-डे टेस्ट मैच के रूप में, जिसमें अधिकतम 80 ओवर होंगे।

यह क्रांतिकारी 'टेस्ट ट्वेंटी' प्रारूप दो पारियों की व्यवस्था लेकर आया है- हर टीम को 20-20 ओवर की दो पारियाँ खेलने का अवसर मिलेगा। दोनों पारियों के स्कोर जोड़े जाएंगे, जिससे टेस्ट क्रिकेट की आत्मा- रणनीति, धैर्य और सहनशक्ति-जीवित रहेगी, पर यह सब एक ही दिन के तेज़-तर्रार रोमांचक प्रदर्शन में सिमट जाएगा। परिणाम जीत, हार, टाई या ड्रॉ- किसी भी रूप में हो सकता है, जिससे क्रिकेट का सारा रोमांच और अनिश्चितता बरकरार रहेगी। 'यह कोई नई लीग नहीं, बल्कि क्रिकेट की आत्मा को समर्पित एक जीवंत श्रद्धांजलि है, कहते हैं- गौरव बहिरवाणी, वन वन सिक्स नेटवर्क के कार्यकारी अध्यक्ष और इस नए प्रारूप के सूत्रधार। 'हम खेल की विरासत को बचाते हुए उसका भविष्य गढ़ रहे हैं। टेस्ट ट्वेंटी टेस्ट क्रिकेट की भावना, कला और सहनशक्ति को एक ही दिन में पुनर्जीवित करता है।'

परंपरा और गति के बीच एक प्रारूप : क्रिकेट का सफर तेज़ प्रारूपों की ओर 60 ओवर वाले एकदिवसीय अंतरराष्ट्रीय मैचों (ODI) से शुरू हुआ, जो बाद में विस्फोटक टी 20 प्रारूप तक पहुंचा। इसके बाद 10 ओवर वाले (टी 10) प्रयोग हुए। अब जब क्रिकेट फिर से ओलंपिक खेलों में लौट रहा है, बहिरवाणी का 'टेस्ट ट्वेंटी' समयानुकूल मिश्रण बनकर सामने आया है- न इतना लंबा जितना टेस्ट, न इतना छोटा जितना T20- बल्कि एक 'मध्य प्रारूप', जो उन दर्शकों को भी आकर्षित कर सकता है जो पाँच दिन के मैचों के लिए अब धैर्य नहीं रखते। इस नए प्रारूप के निर्माताओं का कहना है कि यह 'एक साहसिक विकास है, जो टेस्ट क्रिकेट की गहराई को T20 की ऊर्जा के साथ जोड़ता है, ताकि अगली पीढ़ी के क्रिकेट सितारों की खोज और उत्सव मनाया जा सके।'

आंदोलन के पीछे के दिग्गज : बहिरवाणी के साथ इस प्रयास में क्रिकेट जगत के कुछ महान नाम जुड़े हैं- ए.बी. डिविलियर्स, सर क्लाइव लॉयड, मैथ्यू हेडन और हरभजन सिंह- जो मिलकर टेस्ट ट्वेंटी सलाहकार मंडल बनाते हैं। इनका सामूहिक लक्ष्य है क्रिकेट को ज़िम्मेदारी से विकसित करना, बिना उसकी आत्मा को खोए। 'ए.बी. डिविलियर्स, जो अपनी रचनात्मकता और नवाचार के लिए जाने जाते हैं, इस नए प्रारूप को 'इरादे के साथ नवाचार' कहते हैं-

- 'यह खेल की परंपराओं का सम्मान करता है और भविष्य की संभावनाओं को अपनाता

है। यह युवा खिलाड़ियों को नया सपना देता है और प्रशंसकों को नई कहानी सुनाता है, 'वे कहते हैं। पहले विश्व कप विजेता कप्तान 'सर क्लाइव लॉयड' के अनुसार, टेस्ट ट्वेंटी खोई हुई क्रिकेट कला की पुनर्वापसी है।
- 'खेल हमेशा बदलता रहा है, लेकिन कभी इतना सोच-समझकर नहीं। टेस्ट ट्वेंटी खेल की लय को फिर से लौटाता है और उसे आधुनिक ऊर्जा से भर देता है। 'पूर्व ऑस्ट्रेलियाई ओपनर मैथ्यू हेडन इसे 'युगों के बीच पुल' के रूप में देखते हैं।
- 'एक खिलाड़ी और अभिभावक के रूप में मैं इसे ऐसे प्रारूप के रूप में देखता हूँ, जो पुराने युग की बुद्धिमत्ता को नए युग की ज्वाला में लेकर जाता है, 'वे कहते हैं।
- हेडन के अनुसार, टेस्ट ट्वेंटी सिर्फ एक प्रतियोगिता नहीं बल्कि एक मार्गदर्शन आंदोलन है जो युवा खिलाड़ियों की प्रतिभा और चरित्र को तराशेगा।
- भारत के महान मैच विजेताओं में से एक 'हरभजन सिंह' मानते हैं कि यह प्रारूप क्रिकेट की भावनात्मक धड़कन को फिर से जीवित करता है। 'क्रिकेट को एक नई धड़कन की ज़रूरत थी- जो आज की युवा पीढ़ी को खेल की मूल भावना से जोड़े। टेस्ट ट्वेंटी वही करता है।

क्रिकेट एक नए मोड़ पर : बहिरवाणी के अनुसार, क्रिकेट आज अपनी 'सबसे निर्णायक विकास यात्रा' के मुहाने पर खड़ा है। दशकों तक यह खेल करोड़ों को प्रेरित करता रहा, लेकिन उभरती प्रतिभाओं के लिए कोई एकीकृत वैश्विक मंच नहीं था। 'टेस्ट ट्वेंटी' इसी कमी को पूरा करने का प्रयास है- एक वैश्विक युवा-केंद्रित आंदोलन, जो परंपरा को आधुनिक लय के साथ जोड़कर नई प्रतिभाओं को सामने लाने के लिए बनाया गया है। बहिरवाणी को संचालन में सहयोग दे रहे हैं माइकल फोर्ढम, राजस्थान रॉयल्स के पूर्व सीईओ, जो अब मुख्य परिचालन अधिकारी के रूप में जुड़े हैं। नए प्रारूप की शुरुआत से अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट परिषद (ICC) और पारंपरिक क्रिकेट प्रेमियों के बीच बहस छिड़ना तय है।

चौथे प्रारूप के चार स्तंभ : प्रारूप के अनावरण पर बहिरवाणी ने 'टेस्ट ट्वेंटी के चार स्तंभ' (The Four Pillars of Test Twenty) की अवधारणा रखी- जो क्रिकेट के इस 'चौथे प्रारूप' की दिशा तय करेंगे। यद्यपि इनके पूरे विवरण अभी उजागर नहीं किए गए हैं, लेकिन बताया गया है कि इनमें विरासत और नवाचार, ज्ञान और तकनीक, तथा परंपरा और युवा ऊर्जा का संयोजन होगा। आस्था और उद्देश्य से एकजुट, बहिरवाणी और उनके क्रिकेट आइकॉन साथियों की टीम इस खेल को नई पीढ़ी के लिए फिर से गढ़ रही है।

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं और खेल पत्रकारिता में उनका विशेष स्थान है)

आज भी उतनी ही मूल्यवान है गुरु नानक देव की वाणी

एक संत, उपदेशक, पैगंबर, आधुनिक युग के धर्म के प्रवर्तक और स्त्री-पुरुष समानता, मानव समानता तथा 'सर्बत दा भला'- सबके कल्याण- के महान प्रवक्ता। ये सभी विशेषण भी गुरु नानक देव जी के व्यक्तित्व को पूर्ण रूप से नहीं बयाँ कर पाते। पहले सिख गुरु, गुरु नानक देव जी का प्रकाश पर्व अब वैश्विक आयोजन बन चुका है। दुनिया भर के गुरुद्वारों में अखंड पाठ- श्रीगुरु ग्रंथ साहिब का निरंतर पाठ- के साथ भव्य आयोजन हो रहे हैं। सिख समुदाय अपने घरों और व्यापारिक स्थलों को रोशनी से सजाता है और गुरुद्वारे जगमगाते हुए विशेष कीर्तन दरबारों से गूँज उठते हैं।

1469 में शेखूपुरा (वर्तमान पाकिस्तान) के ननकाना साहिब में एक साधारण व्यापारी परिवार में जन्मे गुरु नानक देव जी ने न केवल समाज को रूढ़ियों और अंधविश्वासों से मुक्त करने का बीड़ा उठाया, बल्कि समानता, धार्मिक सौहार्द और सार्वभौमिक भाईचारे का संदेश दिया। 556 वर्ष बीत जाने के बाद भी उनकी शिक्षाएं आज के समय में और अधिक प्रासंगिक हैं। जब दुनिया धार्मिक असहिष्णुता, साम्प्रदायिक विभाजन, लैंगिक असंतुलन और सामाजिक विघटन जैसी चुनौतियों से जूझ रही है, गुरु नानक का संदेश मानवता के लिए दिशा-सूचक बन जाता है।

दुनिया भर में गुरु नानक देव जी के 556वें प्रकाश पर्व के अवसर पर अखंड पाठ साहिब के आरंभ के साथ उत्सव प्रारंभ हो चुका है। आज का विभाजित संसार भी उनके 'लंगर'- सामुदायिक रसोई-के विचार की सराहना करता है, जहाँ हजारों भूखे, बेघर और पीड़ित लोगों को बिना किसी भेदभाव के भोजन मिलता है। न किसी की जाति पूछी जाती है, न धर्म, न देश। गुरु नानक देव जी ने न केवल सामाजिक बुराइयों के खिलाफ आंदोलन चलाया बल्कि उन्होंने एक साधारण, श्रमशील और संतुष्ट जीवन जीने

प्रभजोत सिंह

का उपदेश भी दिया। कपूरथला जिले के सुल्तानपुर लोधी में उनके जीवन का एक अहम हिस्सा बीता। यही स्थान आज भी विश्वभर से श्रद्धालुओं, धार्मिक नेताओं और विचारकों को आकर्षित करता है। भारत सरकार और शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी (SGPC) के प्रयासों से पाकिस्तान सरकार ने श्री करतारपुर साहिब के लिए एक 'कॉरिडोर' - गलियारा - खोला, जहाँ गुरु नानक देव जी ने अपने अंतिम वर्ष बिताए। इस करतारपुर कॉरिडोर से प्रतिदिन पाँच हज़ार श्रद्धालु दर्शन कर सकते हैं।

पंजाब सदियों से भाईचारे, सेवा और प्रगति का केंद्र रहा है। जब गुरु नानक देव जी के पिता कालू मेहता ने उन्हें व्यापार शुरू करने के लिए 20 रुपये दिए, तो उन्होंने उससे सामान खरीदकर गरीबों को भोजन कराया। यही 'गुरु का लंगर' परंपरा की शुरुआत थी, जो आज भी सिख धर्म की सबसे विशिष्ट पहचान है और जिसने विश्वभर में सामुदायिक रसोई की प्रेरणा दी। हर सिख का स्वप्न होता है श्री करतारपुर साहिब और श्री ननकाना साहिब - गुरु नानक देव जी की जन्मस्थली- की तीर्थयात्रा करना। लेकिन 1947 के विभाजन के बाद ये पवित्र स्थल सीमाओं के उस पार चले गए। करतारपुर साहिब कॉरिडोर का खुलना दशकों बाद उस सपने के साकार होने जैसा है।

श्री करतारपुर साहिब गुरुद्वारा में श्रद्धालु प्रतिदिन सीमित संख्या में पहुँचते हैं। 2019 में आरंभ हुई इस यात्रा में प्रतिदिन 5,000 तीर्थयात्री भारतीय सीमा से होकर पाकिस्तान के नारोवाल जिले स्थित गुरुद्वारे तक पहुँचते हैं। सीमा पार करने के बाद वे इलेक्ट्रिक वैन से स्थल तक जाते हैं और वहाँ 20 अमेरिकी डॉलर का शुल्क अदा करते हैं। पाकिस्तान सिख गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के सेवादार उन्हें ऐतिहासिक स्थल, संरचना और उसकी परंपराओं के बारे में बताते हैं।

नारोवाल में सिख परिवारों की संख्या बहुत कम है, लगभग 125-150। फिर भी यहाँ का वातावरण श्रद्धा और सेवा से भरा हुआ है। यहाँ स्थित कुआँ, जिसे गुरु नानक देव जी खेतों की सिंचाई के लिए प्रयोग करते थे, आज भी श्रद्धालुओं के दर्शन के लिए सुरक्षित है। आसपास उनके खेत, सरोवर, दीवान हॉल, सराय और लंगर हॉल हैं।

करतारपुर साहिब का यह परिसर सफेद संगमरमर से निर्मित है और अपनी शांत भव्यता में गुरु नानक की शिक्षाओं को मूर्त रूप देता है। परिसर में एक संग्रहालय और विशाल प्रतीकात्मक कृपाण भी है, जिसे 2018 में तत्कालीन प्रधानमंत्री इमरान खान ने इस गलियारे के उद्घाटन अवसर पर समर्पित किया था।

इस वर्ष जब दोनों पंजाब बाढ़ की विभीषिका से जूझ रहे थे, करतारपुर साहिब भी जलमग्न हो गया था। लेकिन पाकिस्तान सरकार ने तीव्र कार्रवाई कर उसे शीघ्र ही पूर्व स्थिति में बहाल किया। विडंबना यह है कि वही इमरान खान, जिन्होंने इस पवित्र स्थल को दुनिया के लिए खोला, आज अपने ही देश में कारावास झेल रहे हैं।

गुरु नानक देव जी ने सिख धर्म की स्थापना कर मानवता को न केवल नई दिशा दी बल्कि यह भी सिखाया कि सच्चा धर्म कर्म, सेवा और समानता में निहित है। उनकी वाणी और उनका जीवन आज भी उतना ही प्रासंगिक है, जितना पाँच सदियों पहले था।

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं)

खिचड़ी विरोधी, राष्ट्रद्रोही

प्रो. प्रदीप माथुर

निरंजन बाबू चिंतित बैठे थे। कुछ समझ में नहीं आ रहा था क्या करें? रह-रहकर अपने ऑफिस के उन साथियों पर गुस्सा आ रहा था जिनकी सलाह पर रिटायर होने के बाद उन्होंने ग्रेजुएटी के पैसे से घर की पहली मंजिल पर चार कमरों का पेंइगगेस्ट हाउस बनवा डाला था। उससे भी ज्यादा गुस्सा अपनी पत्नी पर आ रहा था जिन्होंने सलाह दी थी कि हम पीजी के लोगों से पैसे लेकर उनको खाना भी देंगे और इस तरह हम लोगों का खाना-पीना तो उसी पैसे से निकल आएगा।

पीजी गेस्ट हाउस बनाने की राय देने वालों में सबसे आगे सुरेश बाबू थे। उन्होंने ही कहा था कि इस बढ़ती महंगाई के दिनों में छोटी सी पेंशन से कैसे गुजारा होगा। इसलिए पैसा कमाने के लिये कुछ और करना जरूरी है। बात ठीक भी थी। एक लड़के और दो लड़कियों को पढ़ा-लिखा कर उनकी शादी करने के बाद निरंजन बाबू के पास कुछ भी नहीं था। वह भला हो उनके पिता का जो सस्ते दिनों में जमीन खरीद कर आधा-अधूरा मकान बनवा गये। निरंजन बाबू का काफी पैसा उसे पूरा कराने में भी लगा। लेकिन अब उनके पास कम से कम आगरा जैसे बड़े शहर में एक अपना मकान तो था।

अब निरंजन बाबू को फिर पत्नी पर गुस्सा आया, जिन्हें तब ही अपने भइया के घर जाना था जब खाना बनाने वाली महराजिन बीमार पड़ी। सच तो यह था कि उनकी पत्नी महराजिन को सब समझाकर, दाल-चावल की व्यवस्था करके ही अपनी बीमार मां को देखने मायके गयी थी। अब उनके जाने के बाद महराजिन को बुखार आ जाएगा उन्हें क्या पता था।

चार-चार पेइंगगेस्टों को खाना कैसे खिलाया जाय यह खासी बड़ी समस्या थी। पड़ोसी गुप्ता जी की पत्नी ने निरंजन बाबू की सहायता के लिये कहा कि उनका नौकर खिचड़ी बना दिया करेगा। शुक्रवार की शाम उन्होंने खिचड़ी बनवाकर खिलवा दी। लेकिन खिचड़ी देखकर शनिवार को आईटी कंपनी में काम करने वाला राजेश भड़क गया। अगर आपकी कुक बीमार है तो यह आपकी परेशानी है। हम पैसे देते हैं सही खाना मिलना चाहिए। अगर घर पर नहीं बना सकते तो किसी अच्छे होटल से मंगवाइये। अगर अच्छे होटल से मंगवाने लगे तो दिवाला ही निकल जायेगा, यह सोचकर निरंजन जी सिर खुजलाने लगे।

निरंजन जी कुछ सोचकर उठे ही थे कि विनय आ गया। वह उनके बेटे का बचपन का दोस्त था और घर के बच्चों की तरह ही था। जब कैलाश का ट्रांसफर झांसी हुआ तो वह विनय से निरंजन बाबू का ख्याल रखने के लिये कह गया था।

'अंकल क्या हुआ? आज आप परेशान लग रहे हैं।, विनय के यह कहते ही निरंजन बाबू ने अपनी सारी व्यथा कह डाली। होटल की थाली 200 रुपए की आती है। न जाने महराजिन कब ठीक होकर आयेगी।' वह बोले।

'पर अंकल खिचड़ी में क्या परेशानी है। यह तो स्वास्थ्य के लिये अच्छी है।' विनय ने कहा, फिर बोला आप परेशान न होइए कल से आपके चारों मेहमान महराजिन के न आने तक खुशी से खिचड़ी ही खाएंगे।

शाम को जब सॉफ्टवेयर इंजीनियर राजेश, बैंक कर्मचारी निर्मल, कंपटीशन की तैयारी करने वाला महिपाल और एयरटेल में काम करने वाला धीरज अपने-अपने कमरों में पहुंचे तो उन्हें कमरे में एक बड़ा सा लिफाफा मिला। लिफाफा खोलने पर पहला कागज जो था वह एक लेख था जिसकी हेडलाइन थी 'भारतीय संस्कृति में खिचड़ी का महत्व।'

लेख में विस्तार से खिचड़ी के महत्व का वर्णन था। खिचड़ी भगवान शिव का प्रिय भोजन है। चौदह वर्ष के वनवास के दौरान सीता जी अक्सर भगवान राम और देवर लक्ष्मण के लिये खिचड़ी ही बनाया करती थी। पांडवों के अज्ञातवास में पांचाली ने खिचड़ी बनाने में दक्षता प्राप्त कर ली थी।

भारत के विभिन्न गणराज्यों को एक सूत्र में बांध कर भारत को पहली बार एक संपूर्ण राजनैतिक इकाई बनाने वाले आचार्य चाणक्य और चन्द्रगुप्त मौर्य को सही रणनीति अपनाने का ज्ञान खिचड़ी का प्रसंग सुन कर ही हुआ। अगर खिचड़ी पर बात न होती तो शायद मौर्य वंश का राज्य ही न होता और अशोक महान जैसा शासक भारत को न मिलता।

खिचड़ी के महत्व को देखते हुए एक बड़े त्योहार का नाम खिचड़ी है। खिचड़ी धार्मिक अवसरों पर बांटी जाती है, कुंभ और अन्य बड़े मेलों में खिचड़ी आवश्यक है। बिहार में तो खिचड़ी का इतना महत्व है कि सप्ताह में एक बार खाना आवश्यक है।

बेचारे लड़कों को इससे पहले खिचड़ी का महत्व पता ही न था। फिर अगले कागज पर लिखा था कि खिचड़ी न खाना और उसे तिरष्कृत दृष्टि से देखना सनातन भारतीय परंपरा और धर्म के विरुद्ध है। ऐसी धर्म विरोधी हरकतों को हरगिज बर्दाश्त नहीं किया जा सकता है।

इस कागज पर मोटे-मोटे अक्षरों में दो नारे थे-

खिचड़ी का अपमान। नहीं सहेगा हिन्दुस्तान।।

अगला नारा था-

खिचड़ी विरोधी, राष्ट्रद्रोही।

पड़ोसन गुप्ता के सौजन्य से बनकर शाम को लाई गयी खिचड़ी जब नौकर अलगू ने चारों गेस्टों को परोसी तो किसी ने कुछ नहीं कहा।

निरंजन जी अब चिंतामुक्त हो चुके थे। महराजिन ठीक होकर कब आये या श्रीमती जी मायके में अपना प्रवास बढ़ा लें, इसकी अब उनको कोई चिंता नहीं थी।

■■ (यह रचना लेखक के व्यंग्य संग्रह 'तोला माशा मिशा' से ली गई है, जो प्रकाशनाधीन है)

RNI NO. : UPHIN/2016/68336

See Media Map Website

Website link: www.mediamap.co.in

View Media Map YouTube

Media Map News

जनसंवाद 7 : खानपान पर रोक क्यों? Ep- 124

3 views • 4 hours ago

जन संवाद 6 : नेहा हो या कुणाल, व्यंग्य से क्यों डरना? Ep- 123

4 views • 4 hours ago

विविधा 15 : जज को भी छह महीनों की सजा : Ep- 122

27 views • 21 hours ago

विविधा- 14 : कंपनी की तानाशाही - आपके प्रोडक्ट को ख़राब कर रहें हैं। Ep- 121

6 views • 23 hours ago

आर्थिक सहयोग की अपील

उदार लोकतंत्र और गैर-सांप्रदायिक विश्वास के दर्शन से जुड़ा, मीडियामैप समाचार नेटवर्क एक गैर-व्यावसायिक संगठन है। हम आप जैसे गंभीर और समझदार पाठकों को संबोधित करना चाहते हैं। वरिष्ठ मीडियाकर्मियों के समूह द्वारा किया गया यह एक स्वैच्छिक प्रयास है, जिसका किसी राजनीतिक, सामाजिक या व्यावसायिक समूह से कोई संबंध नहीं है। मीडिया मैप के प्रकाशन को निरंतर व सुचारु रूप से जारी रखने हेतु आपका सहयोग आवश्यक है।

- ***State Bank of India***
- ***Account No. 43812481024***
- ***IFSC # SBIN0005226***
- ***प्रस्तुत QR कोड को स्कैन करें।***

प्रकाशक
MBKM Foundation, एक पंजीकृत गैर-लाभकारी संगठन

पंजीकृत कार्यालय
फ्लैट नंबर: 2332, सेक्टर-डी, पॉकेट-2, वसंत कुंज, दक्षिण दिल्ली

RNI No. : UPHIN/2016/68336

Please Stay with us and Explore the Beauty of the Surrounding Areas

Scholars Destination

PLEASE CONTACT

9045005700 | 9910322682 | www.sdmotel.com | info@sdmotel.com

BHALUGAAD WATERFALL

KAINCHI DHAM

MUKTESHWAR DHAM

CHAULI KI JALI